परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 17, अंक 3, दिसम्बर 2010

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2010
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बच्चन सिंह, बी-275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मे. अनिल आफसेट एंड पैकेजिंग प्रा. लि., दिल्ली-110007 में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 17, अंक 3, दिसम्बर 2010

विषय सूची

आलेख

संजय शर्मा
शिक्षा, गुणवत्ता एवं विचारधारा 1

अश्वनी
शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 के कार्यान्वयन में पंचायतीराज संस्थाओं की भूमिका 17

महेश कुमार मुछाल
महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण 37

कुसुम यदुलाल और **शशिभूषण त्रिपाठी**
शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों का तुलनात्मक अध्ययन 49

शोध टिप्पणी / संवाद

ऊषा मिश्रा और **मोनिका सरोज**
उच्च एवं निम्न आकांक्षा–स्तर वाले मूक–बधिर विद्यार्थियों की आवश्यकताएं और उनका समग्र व्यक्तित्व विकास 71

रमेश धर द्विवेदी और **प्रतिमा मिश्रा**
माध्यमिक स्कूल स्तर पर सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में अग्रिम संगठक प्रतिमान की प्रभाविकता 83

अखिल कुमार और **मधु कुशवाहा**
विद्यालयी शिक्षा में अनुशासन के विविध आयाम 91

मुरलीधर मिश्रा
बुद्धि के सन्दर्भ में संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैलियों की उपादेयता 101

संगीता जैन और **लक्ष्मी शर्मा**
शिक्षण अधिगम प्रक्रिया तथा क्रमबद्ध पर्याय 109

अश्वनी कुमार गौड़
महाविद्यालयी शिक्षकों द्वारा अवलोकित शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों के संस्थागत वातावरण तथा उनकी समायोजन समस्याओं का संबंध 115

चिंतक और चिंतन

रश्मि श्रीवास्तव
रवीन्द्रनाथ टैगोर के शौक्षिक विचारों की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता 129

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 17, अंक 3, दिसंबर 2010

शिक्षा, गुणवत्ता एवं विचारधारा

संजय शर्मा*

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा या शिक्षा में गुणवत्ता का संप्रत्यय वर्तमान शिक्षा-विमर्श में अपने ऐतिहासिक स्वरूप से केवल महत्त्वपूर्ण नहीं बल्कि प्रसांगिक भी रहा है। वस्तुत: 'गुणवत्ता' का यह मसला विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक राजनैतिक-आर्थिक एवं शैक्षिक आयामों पर लगातार (पुन:) परिभाषित किया जाता रहा है। विडंबना है कि वर्तमान शिक्षायी 'आपातकाल' के दौर में भी इस संप्रत्यय को अपने मूल स्वरूप एवं संदर्भ में समझा ही नहीं गया। गुणवत्ता के आयाम को प्राय: सभी ज्ञान संप्रदाय अपने-अपने स्वरूप एवं प्रकृति के अनुसार उद्घाटित करते रहे हैं, जिसके परिणामत: यह (गुणवत्ता) सम्पूर्णता/समग्रता में स्पष्ट न होकर, विभिन्न उपइकाईयों का समुच्चयगत समाकलन बन गई है। यह बौद्धिक एवं अन्तरानुशासनिक वंचना ही है कि नीतिनिर्धारक, शिक्षा विचारक आदि गुणवत्ता को बाद में आरोपित की जा सकने वाली विषयवस्तु समझने लगे हैं। शिक्षा में जब भी गुणवत्ता के मसले पर गंभीर चर्चा होती है तो आश्चर्यजनक रूप से यह शिक्षाविमर्श, शिक्षानीतियों, कार्यक्रमों, पाठ्यचर्या, परीक्षा-तंत्र, स्कूली संसाधन, शिक्षा-शिक्षार्थी के कक्षागत संबन्धों आदि में भटकता हुआ, अप्रसांगिक एवं अनैसर्गिक सी प्रतीत होती हुई दिशाविहीन बहस में उलझ कर रह जाता है। इसी का परिणाम है कि गुणवत्ता का मसला एक शब्दाडम्बर का ही स्वरूप पुनर्उत्पादित करता जान पड़ता है। प्रस्तुत लेख गुणवत्ता को पूंजीवादी-नवउदारवादी संदर्भ में पुनर्परिभाषित, पुनर्संरचित एवं पुनर्निर्मित करने की दिशा में अग्रसर होने की सैद्धांतिक एवं अनुभवात्मक उद्घाटन के स्पष्टीकरण की गंभीर मांग करता है।

गुणवत्ता का संदर्भ : एक विवादास्पद अवधारणा

गुणवत्ता का अभिप्राय विभिन्न अर्थों, संदर्भों एवं अनुभवों से परिभाषित किया जाता रहा

* शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय में 'दलित अस्मिता एवं सामाजिक बहिष्करण में शिक्षा की भूमिका' पर शोधरत हैं एवं जवाहरलाल नेहरु (तीनमूर्ति मेमोरियल) शोधवृत्तिक (फैलो) हैं।

है। औद्योगिकीकृत एवं आधुनिकता की परिभाषा पा चुके इस समाज में गुणवत्ता प्राय: उत्पादन-प्रक्रिया एवं उत्पाद से समझी जाती रही है, वहीं पारम्परिक एवं बहुसांस्कृतिक समाज व्यवस्था में इसके मायने विभिन्न आयामों से उल्लेखित होते रहे हैं। गुणवत्ता एक मनोवैज्ञानिक या नैतिक विशेषता है जिसे प्राय: किसी वस्तु या परिघटना की सापेक्षिक स्थिति, प्रकृति, स्वरूप या गुणों के रूप में समझा जाता है (ओ.ई.डी. : 2005)।

प्राय: कार्यकुशलता, प्रभाविकता, मानकता, उत्कृष्टता एवं गुणवत्ता आदि संप्रत्यय एक ही अर्थ में प्रयुक्त किए जाते रहे हैं जो कि इस संदर्भ में स्वयं में ही एक भ्रामक एवं त्रुटिपूर्ण समझ निर्मित करते हैं। विद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की अवधारणा को बच्चों की उत्तरजीविता, संरक्षण, विकास एवं सहभागिता के अधिकारों की सुरक्षा के रूप में व्याख्यायित किया जाता रहा है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मुख्य ध्यान अधिगम की उन स्थितियों एवं संदर्भों से है जो बच्चों में अर्थपूर्ण एवं प्रासंगिक ज्ञान, उपयोगी कुशलताओं एवं वांछित अभिवृत्तियों का विकास करने में सहायक होती है (यूनिसेफ, 2000:04)।

यूनिसेफ का उक्त दस्तावेज गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अन्तर्गत निम्न बातें सम्मिलित करता है : स्वस्थ, जिज्ञासु एवं परिवार द्वारा पोषित अधिगमकर्ता, स्वस्थ, सुरक्षित एवं संसाधनपूर्ण परिवेश, कुशल एवं प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा संपादित अर्थपूर्ण, प्रासंगिक एवं उपयोगी विषयवस्तु एवं समाज में सकारात्मक भागीदारी एवं शिक्षा के लक्ष्यों की पूर्ति करने वाले शिक्षायी 'परिणाम'।

गुणवत्ता की अवधारणा का पहला अर्थ उस महत्त्वपूर्ण गुण को इंगित करता है जिससे किसी वस्तु को पहचाना और व्याख्यायित किया जा सकता है और दूसरा अर्थ एक वस्तु के दूसरे की तुलना में पदानुक्रम एवं उत्कृष्टता में वरीय होने को इंगित करता है। शिक्षा में गुणवत्ता का विचार उपरोक्त दोनों संदर्भों का अर्थापन करता है।

वस्तुत: शिक्षायी विमर्श में 'गुणवत्ता' की मौजूदा बहस पश्चिमी जगत में भी ज्यादा पुरानी नहीं है। अवधारणात्मक दृष्टिकोण से यह मूलत: अर्थशास्त्र तथा निर्माण-उद्योग के क्षेत्रों से निष्कर्षित है जिसमें प्राय: निश्चित पूँजी (मशीनरी और कच्चा माल) और परिवर्तनशील पूँजी (श्रम) को निवेश (इनपुट) के रूप में तथा निर्मित वस्तुओं को उत्पाद/आउटपुट (गुणवत्ता और मात्रा, दोनों) के रूप में लिया जाता है। विंच, इस बात को प्रमुखता से स्वीकार करते हैं कि शिक्षा में इनपुट और आउटपुट अर्थात आगत-निर्गत के दर्शन ने शिक्षा के एक यूरोपीय आयाम को निर्मित करने की कोशिशों को गहरे तौर पर

प्रभावित किया है। वस्तुत: यह उद्यम शायद यूरोपीय यूनियन में शैक्षिक व्यवस्था के लिए बाजार-रचना की कोशिशों के चरम बिंदु के रूप में समझा जा सकता है।

भारतीय संदर्भ में शिक्षा में गुणवत्ता का सवाल 20वीं सदी के मध्याह्न की केंद्रीय विषय वस्तु रहा है। इसकी स्पष्ट झलक भारतीय शिक्षायी नीतिगत दस्तावेजों में आर्थिक सुधार के दौर में अर्थात् 1990 के दशक में दिखायी पड़ती है।

स्वतंत्रता के तुरंत बाद की प्रमुख (लगभग सभी) शिक्षा नीतियाँ एवं कार्यक्रम 'गुणवत्ता' की अवधारणा को 'शिक्षा की अवधारणा' से विभाजित करके उस तरह से नहीं देखते थे जिस तरह से बाद की नीतियाँ एवं कार्यक्रमों ने गुणवत्ता को कायम रखने का उत्तरदायित्व कभी शिक्षकों पर (नयी शिक्षा नीति : 1986), शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं पर (राममूर्ति रिपोर्ट, 1990:158), बुनियादी अधिगम आवश्यकता से जीवन की गुणवत्ता (ज्योमितियन घोषणा : 1990), ज्ञान एवं सूचना का द्वन्द्व (राष्ट्रीय सलाहकार समिति : 1993), पाठ्यचर्या अधिभार (यशपाल समिति : 1993), विचाराधारात्मक राष्ट्रीय एकीकरण (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप : 2000) एवं आलोचनात्मक-निर्माणात्मक चिंतन एवं शिक्षण अधिगम (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप : 2005) पर डाला है।

इस दौरान शिक्षक की जवाबदेही, अधिगम की सुनिश्चितता बच्चों के सीखने का स्तर, विद्यालय प्रबन्ध आदि गुणवत्ता के लिए प्रमुख संज्ञानात्मक मुद्दे रहे हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के बाद शिक्षायी गुणवत्ता की अवधारणात्मक समझ एवं व्याख्या में आमूल-चूल परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इसी के बरक्स इस नीति के पूर्ववर्ती दशकों में 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा', शिक्षा की नीतियों एवं कार्यक्रमों में अपनी 'पूर्ण चिंता' के साथ सम्मिलित नहीं थी। चिंता थी तो सिर्फ इस बात की कि 'बच्चों के स्कूली अनुभवों को बेहतर बनाया जाए, शिक्षण-अधिगम नीरस न हो, अधययन-अधयापन परीक्षा केंद्रित न हो, उबाऊ एवं रटन्त प्रक्रिया कक्षाओं से दूर रहे, इत्यादि।

इस दौर के शिक्षा विमर्श की मुख्य चिंता वित्तीय प्रावधानों में बढ़ोत्तरी, संख्यात्मक विस्तार एवं फैलाव, शिक्षायी मानकों का पुनर्गठन थे, जिनके आधार पर शिक्षायी नीतिकारों ने एक समावेशी, समग्र व समतावादी समाज के निर्माण का स्वप्न संजोया था। क्योंकि शिक्षा में गुणवत्ता एवं विस्तार के द्वैत (हर्टाग कमेटी : 1929) को रेखांकित करना औपनिवेशिक शिक्षा नीति का सौद्देश्यपूर्ण कदम था (रामपाल : 2004:46)। यहाँ तक की, जे.पी. नाईक जो कि कोठारी आयोग (1964-66) के सदस्य थे, ने भी इस बात को

प्रभावी रूप से स्वीकार किया कि शिक्षा में पहुँच का प्रावधान पहले है तथा गुणवत्ता का मसला उसके बाद आता है (रामपाल 2004:47)।

'राज्य' शिक्षा द्वारा (शिक्षा तंत्र में भी) औपनिवेशिक प्रणाली को बदलने के लिए प्रतिबद्ध था, ताकि उभरते लोकतंत्र की जरूरतों को पूरा किया जा सके, इस धारणा के साथ ही इस मौजूदा तंत्र को इस तरह सुधारा जाय कि वह सामाजिक सुधार के एजेण्डे को लागू कर सके।

उक्त बदलाव की सोच इस बात को और पुख्ता करती है कि भारतीय लोकतंत्र संवैधानिक मूल्यों एवं प्रावधानों-मसलन उदारवादी, समानता, समता, धर्मनिरपेक्षता आदि को शिक्षा की 'अक्ष' पर पाना चाहता था। शिक्षा पर किया गया यह विश्वास वस्तुतः उसकी नैसर्गिक गुणात्मक चारित्रिक विशेषता के कारण था, जो कि उसमें अन्तर्गुथित अभिन्नता एवं अनिवार्यता लिए हुए थी। परन्तु अफसोसजनक रूप से संवैधानिक दर्शन के मुताबिक शिक्षा के विकास को दिशा-निर्देश देने वाली कोई भी परिप्रेक्ष्य योजना नहीं बनाई गई (नाइक : 1965)। बावजूद इसके 1964-66 में गठित शिक्षा आयोग को राष्ट्रीय विकास में शिक्षा की भूमिका को लेकर भारतीय राज्य के दृष्टिकोण को व्यक्त करने एवं व्याख्यायित करने की गंभीर जिम्मेदारी सौंपी गई जिसके तहत शिक्षा को 'सभी तरह की उपलब्ध प्रतिभाओं को विकसित करने और... जनसंख्या के सभी हिस्सों को अवसरों की बराबरी प्रगतिशील तरीके से सुनिश्चित करने' का काम करना था (भारत सरकार : 1966)।

समतावादी व लोकतांत्रिक ढंग से शिक्षा तक पहुँच को बढ़ावा देने के लिए जन समुदाय के लिए प्राथमिक स्कूलीकरण के फैलाव को जरूरी समझा गया। शैक्षिक अवसरों की समानता के लिए प्रारम्भिक स्तरीय स्कूलों का विस्तार तथा सामान्य स्कूल प्रणाली की स्थापना की गई जिसका मकसद एक समान गुणवत्ता वाली सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली को विकसित करना था (वेलास्कर : 2006)।

वस्तुतः नीतिगत शिक्षायी पहलकदमी के तौर पर जहाँ एक ओर 'गुणवत्ता' 'समतामूलकता' के सरोकार के साथ घुली-मिली थी, वहीं सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में सामाजिक न्याय घुला-मिला था। सामान्य स्कूल प्रणाली में स्कूलों के बीच आधारभूत सुविधाएँ, शिक्षक, पाठ्यचर्या, आदि को लेकर 'तुलनीय गुणवत्ता' को सुनिश्चित किया जाना अन्तर्निहित था (वेलास्कर : 1996)।

1986 की नवीन शिक्षा नीति की पुनरीक्षा करते हुए राममूर्ति (1990) ने शिक्षायी

गुणवत्ता के लिए तात्विक सुधारों की ओर ध्यान आकृष्ट किया। उनके अनुसार शिक्षायी गुणवत्ता के लिए शिक्षक की भूमिका, समुदाय तथा बालक का परिवेश अनिवार्यत: घटक है जिन्हें शिक्षायी प्रक्रियाओं एवं कार्यक्रमों में शामिल किए बिना गुणवत्ता को नहीं पाया जा सकता। पुनरीक्षा समिति (1990) ने गुणवत्ता के लिए विद्यालयों में बुनियादी सुविधाओं, मसलन तीन बड़े कक्षाकक्ष, शिक्षण अधिगम सामग्री, दो शिक्षकों (जिसमें अनिवार्यत: कम से कम एक महिला शिक्षिका हो) को आवश्यक माना। समिति ने इस बात पर मुख्य ध्यानाकर्षण किया कि 'शिक्षा में न केवल पहुँच के स्तर पर सबके लिए अवसरों की समानता हो बल्कि उन्हें सफलता के लिए भी समान अवसर मिले।' नई शिक्षा नीति (1986) की पुनरीक्षा समिति ने गुणवत्ता के विमर्श को एक दिशा देते हुए शिक्षा में गुणवत्ता को शिक्षकों की गुणवत्ता के साथ संयुग्मित किया। शिक्षकों द्वारा बाल केन्द्रित शिक्षण पर आधारित शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाओं के द्वारा ही शिक्षा में गुणवत्ता को समझा जा सकता है (पुनरीक्षा समिति 1990)।

वस्तुत: शिक्षकों को शिक्षा में गुणवत्ता के लिए महत्त्वपूर्ण कारक समझने तथा घोषित करने की परम्परा शिक्षा विमर्श में नई विधा नहीं है। स्वतंत्र भारत में समग्र शिक्षा तंत्र की दशा एवं दिशा को समझने के लिए गठित राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964–66) की सिफारिशों पर आधारित राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) ने महत्त्वपूर्ण रूप से स्वीकार किया कि 'शिक्षा की गुणवत्ता को तय करने वाले सभी महत्त्वपूर्ण कारकों में से 'शिक्षक' अतिमहत्त्वपूर्ण कारक हैं, इसमें कोई संशय नहीं है' (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968:12)।

जहाँ एक ओर 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा के लिए शिक्षकों की गुणवत्ता पर आधारित थी, वहीं दूसरी ओर नई शिक्षा नीति (1986), शिक्षकों के चयन की विधि एवं प्रक्रिया में निष्पक्षता एवं पारदर्शिता को लेकर अधिक सचेत थी। परिणामत: नई शिक्षा नीति (1986) ने शिक्षा में गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण एवं सेवाकालीन व्यावसायिक दक्षता विकास को अपने कार्यक्रमों में गहनतम रूप से शामिल किया। 1992 में गठित कार्ययोजना ने स्पष्ट किया कि 'शिक्षा में गुणवत्ता को शिक्षकों के जरिए परिभाषित किया जाएगा जिसमें शिक्षकों द्वारा स्वयं का मूल्यांकन तथा अपने सहकर्मियों का मूल्यांकन आधार बनेंगे' (कार्ययोजना : 1992)।

उपरोक्त संदर्श से स्पष्ट है कि नई शिक्षा नीति (1986) में जहाँ गुणवत्ता का मसला शिक्षकों के चयन पर केन्द्रित था, वह अब 1992 तक आते–आते शिक्षकों के स्वमूल्यांकन पर केन्द्रित हो गया। गुणवत्ता को विभिन्न तत्वों में तलाशने की प्रक्रिया के चलते ही

विद्यालयों में शारीरिक प्रताड़ना की रोकथाम को शिक्षा में गुणवत्ता का एक मापक माना जाने लगा।

शिक्षा में गुणवत्ता के मुद्दे को पाठ्यचर्चा एवं पाठ्यपुस्तकों के संदर्भ में भी समझा गया। 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने शिक्षा में गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए शिक्षा में भाषायी माधयम को महत्त्वपूर्ण आयाम माना जिसके चलते आयोग ने सिफारिश दी कि 'प्राथमिक एवं प्रारम्भिक स्तर में स्थानीय भाषा को माध्यम के रूप में अपनाया जाना चाहिए।'

आयोग का मत था कि ऐसा करने से शिक्षायी स्तर को बढ़ाने के साथ-साथ, ज्ञान के प्रसार में मदद मिलेगी और बौद्धिक जगत एवं जन मानस के बीच बढ़ते अंतराल को कम किया जा सकता है। आयोग ने शिक्षा और जीवन के बीच एक गहनतम जुड़ाव को गुणवत्ता संप्रत्यय के लिए अपरिहार्य माना। इसी अवधारणा के फलस्वरूप समुदाय एवं पाठशाला के बीच रिश्ता तलाश किया गया। स्वयं सहायता, चरित्र निर्माण एवं सामाजिक प्रतिबद्धता के लिए समझ विकसित करने के उद्देश्य से शिक्षा में कार्यानुभव एवं सेवा योजना की शुरूआत की गई।

इतना ही नहीं आयोग की गुणवत्ता को लेकर गंभीरता इसी बात से स्पष्ट होती है कि उसने उच्च गुणवत्तापूर्ण पाठ्यपुस्तकों को कम लागत से तैयार करने की आवश्यकता पर बल दिया। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए 1986 की नई शिक्षा नीति ने पाठ्यपुस्तकों के अनुवाद, अन्य भाषाओं में रूपांतरण, बहुभाषी शब्द कोश आदि को तैयार करने के लिए कार्यक्रम बनाए ताकि सभी क्षेत्रों में इनकी पहुँच सुनिश्चित हो सके।

1992 की कार्ययोजना ने शिक्षा में गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के लिए शिक्षक एवं समुदाय की आपसी भागीदारी के साथ शिक्षायी योजनाओं के विकेन्द्रीकरण की बात कही (कार्ययोजना, 1992)।

आचार्य राममूर्ति (1990) ने नई शिक्षा नीति की पुनरीक्षा करते हुए प्रारम्भिक शिक्षा के पूर्ण व्यावसायिकरण, विषयवस्तु एवं शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाओं के बीच आपसी समन्वय, समुदाय एवं स्कूल के बीच संवाद, प्राथमिक स्तर के लिए मातृभाषा में शिक्षण इत्यादि को गुणवत्ता के तात्विक आयामों के रूप में सामने रखा। विभिन्न शिक्षा नीतियों एवं योजनाओं में बच्चों का स्कूल में लगातार न बने रहना अर्थात् बीच में ही विद्यालय छोड़ देना (ड्रॉप-आउट) भी गुणवत्ता के लिए एक चुनौती के रूप में देखा गया।

स्वतंत्रता के बाद बने शिक्षा आयोग (1968) के समक्ष बीच में ही स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों का मुद्दा उस तरह चिंताजनक नहीं था, जिस तरह 1986 की नई शिक्षा नीति ने इसे चुनौतीपूर्ण माना। इसी के चलते 1986 की नई शिक्षा नीति ने इस चुनौती का समाधान गैर-औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में तलाशना शुरू किया।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि 1986 की शिक्षा नीति ने ही गुणवत्ता को औपचारिक तथा गैर-औपचारिक शिक्षा तंत्र के लिए पृथक-पृथक देखने की प्रवृत्ति का बीजारोपण किया।

आगे की विवेचना से पहले इस बात को समझ लेना आवश्यक होगा कि शिक्षा को लेकर बने दस्तावेजों क्रमशः राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) एवं नई शिक्षा नीति (1986), दोनों ही दो अलग-अलग राजनैतिक-आर्थिक-सामाजिक विचार परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

1968 की शिक्षा नीति जहाँ शिक्षायी उत्कृष्टता एवं गुणवत्ता को समतामूलक समाज की प्रस्थापना में निहित मानती है, और उसके लिए समान स्कूल प्रणाली का व्यावहारिक सिद्धांत प्रतिपादित करती है, वहीं दूसरी ओर 1986 का शिक्षायी दस्तावेज 'शिक्षा के सार्वजनीकरण' को 'स्कूल' के बिना भी हासिल करना चाहता है, जहाँ 'तुलनीय गुणवत्ता' निरपेक्ष भाव की तरह उपस्थित है जिसे 'न्यूनतम-अधिगम स्तर' की कसौटी पर हासिल किया जाना है।

शिक्षा नीति, वैश्वीकरण एवं नवउदारवाद

20वीं सदी का मध्याह्न भारतीय राजनैतिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण दौर रहा है जिसमें कई विचाराधारात्मक 'विभ्रमों' की उपस्थित रही। इस दौर में समाजवाद, पूँजीवाद एवं उदारवाद अपने दुग्राह्य स्वरूप में था, जहाँ यह सभी अपने-अपने सामर्थ्य एवं तरीके से सामाजिक-आर्थिक-शैक्षिक-राजनैतिक भारतीय विचार-परम्परा को लगातार प्रभावित कर रहे थे। 'समता व सामाजिक न्याय के साथ वृद्धि' के नेहरूवादी नजरिए ने नये देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए पूँजी के जमाव, आर्थिक वृद्धि, आधुनिकीकरण और राज्य द्वारा नियंत्रित समाजवादी रूपांतरण का विकासवादी प्रारूप तैयार किया जो (बराबरी और सामाजिक न्याय का उदारवादी दर्शन) पंचवर्षीय विकास योजनाओं में अभिव्यक्त हुआ (कविराज : 2000)।

कालांतर में पूँजीवादी औद्योगिकीकरण और तकनीकी तौर पर आधुनिकीकरण के

राजनैतिक समर्थन ने भारतीय राज्य की आर्थिक एवं शैक्षिक विकास की नीतियों को उत्तरोत्तर अपने प्रभाव में ले लिया (कामत : 1985)।

20वीं सदी के अन्तिम दशक के आते-आते वैश्विक पूँजीवाद एवं नवउदारवादी विचारधारा ने 'शिक्षा' एवं उसके विमर्श को एक नये तरीके (मूलत: उपभोक्तावादी एवं उपयोगितावादी) से परिभाषित एवं उद्घाटित करने का 'मिशन-प्रोजेक्ट' प्रारम्भ कर दिया जिसकी झलक हमें भारतीय शिक्षा के एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), में भी दिखाई पड़ती है।

इस दौर के शिक्षायी विमर्श में गुणवत्ता के मुद्दे को लेकर एक गंभीर वैचारिक परिवर्तन देखने को मिलता है जिसमें शिक्षायी गुणवत्ता के आयाम को एकीकृत रूप से न देखकर विभिन्न उपअवयवों में विभाजित करके देखने एवं ग्रहण करने की नीतिगत सोच का सूत्रपात होता है।

90 के दशक के दौरान आर्थिक सुधारों की वैश्विक चहलकदमी में अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों, दानदाता संगठनों द्वारा समर्पित अनुदान, रण-नीतियों द्वारा विकासशील एवं अविकसित राष्ट्र समुदायों की शिक्षा नीतियों, कार्यक्रमों एवं योजनाओं में व्यापक हस्तक्षेप स्कूलीकरण एवं शिक्षा में सुधार की प्रक्रियाओं के नाम पर देखा जा सकता है। इस संदर्भ में कृष्ण कुमार (2010), विकसित पश्चिमी देशों की 'गुणवत्ता' पर की गई चिंता को महत्त्वपूर्ण मानते हैं, जिसमें उनका एकमेव धयान 'गुणवत्ता' को प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त के रूप में तब्दील करने से है।

अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं एवं एजेंसियों द्वारा समर्थित (वैचारिक रूप से) एवं पोषित (वित्तीय रूप से) नीतियाँ एवं कार्यक्रम मुख्य तथा शिक्षा में 'लागत-प्रभाविता प्रतिरूप' पर आधारित थे, जिन्होंने 'लागत कम-मुनाफा अधिक' के बुनियादी सिद्धांत के चलते शिक्षा में 'समता और गुणवत्ता' की अवधारणा को विकृत कर दिया। इसके परिणामस्वरूप मौजूदा नवउदारवादी सोच एवं लक्ष्य ने मानव को महज एक संसाधन निरूपित करते हुए, उससे अधिकतम 'मुनाफा' कैसे हो, उस पर 'ज्ञान की अर्थव्यवस्था' को केन्द्रित कर दिया (रसूल : 2009:129)।

इसी विचारधारा से अभिप्रेरित 'नवउदारवाद' ने अधिगमकर्त्ता के ज्ञान को दक्षता, कौशल एवं स्व-नियोजन; जो कि बाजार की माँग के अनुरूप हो; के संकीर्ण एवं पूँजीवादी रवैये में तब्दील कर दिया है। वस्तुत: नवउदारवादी सोच शिक्षा में गुणवत्ता का यही अभिप्राय निष्कर्षित करती है।

शिक्षायी गुणवत्ता की इस वैश्विक एवं साम्राज्यवादी व्याख्या ने भारत जैसे बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक, बहुस्तरीय पदानुक्रमिक समाज में पहले से मौजूद गैर-बराबरी व विषमता को बहुगुणित रूप से गहरा किया है जिसकी झलक हम भारतीय स्कूली चरित्र में कई रूपों एवं आयामों में देख सकते हैं।

राष्ट्रीय साक्षरता दरों में लगातार वृद्धि, बच्चों का उत्तरोत्तर बढ़ता नामांकन एवं उनकी 'भौतिक' उपस्थिति के बाद भी शिक्षा की गुणवत्ता का सवाल अनुत्तरित रह जाता है जिसका जवाब प्रायः नीति-निर्धारकों एवं 'शिक्षाविद्-सह-अर्थशास्त्रियों' द्वारा राज्य की सत्ता, स्कूली स्थिति, आधारभूत-अधोसंरचना, शिक्षण-अधिगम सामग्री की अनुपलब्धता, प्रशिक्षित, प्रेरित एवं प्रतिबद्ध शिक्षकों का अभाव में तलाश (जानबूझकर गलत जगह पर) किया जा रहा है। विडम्बना है कि एक ओर जहाँ बच्चे का मौलिक अधिकार बनाया जा रहा था, वहीं दूसरी ओर आश्चर्यजनक रूप से 'सरकारी कवायद' ने केरल, मध्यप्रदेश, राजस्थान, दिल्ली आदि अनेक प्रदेशों में कई स्कूलों को 'समानीकरण' की तर्ज पर या तो बन्द कर दिया या फिर उन्हें किसी अन्य स्कूल के साथ 'अधिगृहित' कर दिया गया। इन विरोधाभासों की रोशनी में राज्य की इच्छा शक्ति, मानसिकता, विचारधारा (जो कि अब स्पष्टतः पूँजीवादी एवं नवउदारवादी ताकतों के पक्ष में खड़ी दिखती है) को समझना आवश्यक है। भारतीय 'लोककल्याणकारी' राज्य की शिक्षा नीतियों एवं कार्यक्रमों में वैश्विक नवउदारवादी रूप दो तरीको से समझा जा सकता है- पहला, जिसमें राज्य की 'लोककल्याणकारी' सोच ने अन्यायपूर्ण एवं विषमतामूलक व्यवस्था के लिए नौकरशाही की अक्षमता, अप्रभाविता एवं जटिल केंन्द्रीकृत प्रबन्धन को उत्तरदायी माना। दूसरा, इन नवउदारवादी-पूँजीवादी ताकतों ने व्यापक रूप में जनमानस को (दमदार तरीके से एवं बिना प्रश्नचिह्न के) इस बात से सहमत करने में सफलता पायी कि शिक्षायी विमर्श की समस्याओं का मुख्य कारण, कमजोर प्रशासन, संसाधनों की कमी, अपर्याप्त बजटीय आवंटन, चयन की अनुपलब्धता, अनुपयोगी पाठ्यचर्या, शिक्षक निर्माण प्रक्रिया में खामियाँ आदि हैं।

वस्तुतः इसके पीछे वैश्विक ऋण/दानदाता एजेंसियों, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं (विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एव संयुक्त राष्ट्र संघ के आनुषंगिक संगठनों) एवं पूँजीवादी-नवउदारवाद के लिए 'लाभकारी' ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम की शर्तों के तहत भारतीय 'लोककल्याणकारी' राज्य में प्रभुत्वशाली देशों, बहुपक्षीय, कारपोरेट पूँजी और बाजार की ताकतों के लिए जमीन तैयार करना था, जो कालान्तर में शिक्षा के जरिये

अपने हित साधना कर सके। मसलन सार्वजनिक-निजी साझेदारी मॉडल के उदारहण से हम इसकी बेहतर व्याख्या कर सकते हैं।

इसका (कु)प्रभाव यह हुआ है कि शिक्षा विमर्श (स्कूल, पाठ्यचर्या, संसाधन, नीतियाँ आदि) में समता, गुणवत्ता, कार्यदक्षता एवं प्रभावोत्पादकता के लिए शिक्षा के विकेन्द्रीकरण और सेवाओं में निजीकरण को एक मूलभूत नीतिगत उपाय के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

इस आश्चर्यजनक स्वीकारोक्ति ने संवैधानिक प्रावधानों एवं उसके निमित्त जवाबदेही को हाशिए पर ला दिया। मौजूदा शिक्षा का मौलिक अधिकार विधेयक-2009, गुणवत्ता को 'न्यायसंगत गुणवत्ता' के रूप में समझने की बात करता है। वस्तुत: इसका सूत्रपात नई शिक्षा नीति (1986) में ही हो गया था, जिसने इस बात को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया कि '6-14 वर्ष के सभी बच्चों को 'तुलनीय गुणवत्तापूर्ण' प्रारम्भिक शिक्षा देना भारतीय 'राज्य' के लिए संभव नहीं है (सद्गोपाल : 2006, पृ. 96)'।

जबकि 'तुलनीय गुणवत्तापूर्ण शिक्षा' एवं 'गुणवत्तापूर्ण' शिक्षा की प्राप्ति के समान अवसरों का हक संवैधानिक उपबन्धों के तहत भारतीय बच्चों को है। कालांतर में इसी विषमतामूलक, बहुस्तरीय एवं असमान गुणवत्ता वाली दोयम दर्जे की शिक्षा व्यवस्था ने भारतीय समाज की गैर-बराबरी, विषमतामूलक, सामाजिक-सांस्कृतिक-ब्राह्मणवादी संरचना को और गहरा करने का काम किया।

शिक्षा में गुणवत्ता, समता और दलित के नीतिगत सरोकार

सबके लिए शिक्षा के वैश्विक घोषणा (1990) से लेकर आज तक सबके लिए शिक्षा के विमर्श में कई बदलाव देखने को मिलते हैं। प्रारम्भिक दौर में जहाँ जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम का मुख्य जोर स्कूल तक पहुँच, नामांकन तथा ठहराव पर केन्द्रित था, वहीं बाद में 'सबके लिए शिक्षा' ने इसे शिक्षायी उपलब्धि तथा गुणवत्ता से जोड़ा जिसमें यह महत्त्वपूर्ण बना कि बच्चे विद्यालय में क्या सीख रहे हैं और कैसे सीख रहे हैं। शिक्षा में गुणवत्ता को लेकर इस बात पर पर्याप्त सहमति नहीं है कि गुणवत्ता क्या है? अभी तक शिक्षा कार्यक्रम एवं नीतियाँ गुणवत्ता की परिस्थितियों; जैसे बुनियादी सुविधाएँ, अधोसंरचनाएँ, संसाधन, शिक्षकों की उपस्थिति, बच्चों का नामांकन तथा उनका ठहराव, नवाचारी शिक्षण विधाएँ इत्यादि को ही परिभाषित कर पा रही हैं।

शिक्षा विमर्श में गुणवत्ता के संदर्भ में, गुणवत्ता के मुद्दे को समग्रता में न समझ कर इसे गुणवत्ता के सूचकों के संदर्भ में ही समझा जाता रहा है। आर्थिक सहयोग एवं विकास

संगठन (2000) ने भी गुणवत्ता के संदर्भ में ''विश्व शिक्षा सूचकांक'' को तैयार किया है जिनमें प्रमुख रूप से शिक्षा में आर्थिक एवं मानवीय संसाधनों का निवेश, शिक्षा तक पहुँच, भागीदारी, अधिगमगम्य वातावरण विद्यालयी संगठन, शिक्षा की व्यक्तिगत एवं सामाजिक उपलब्धि, इत्यादि सूचीबद्ध है। इसी तरह यूरोपियन परिषद ने शिक्षायी गुणवत्ता को लेकर 16 गुणात्मक सूचक निर्मित किए हैं जिन्हें संसाधन एवं संरचनाएँ, शिक्षा में निगरानी, उपलब्धि तथा रूझान आदि के अन्तर्गत विभाजित किया गया है। वैश्विक निगरानी रिपोर्ट ने भी सबके लिए शिक्षा कार्यक्रम में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों को अंगीकार किया। सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य के तहत यह उद्देश्य निर्धारित किया गया कि '2015 तक सभी बच्चे अपनी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने की स्थिति में सक्षम हो जाएं।' इससे पहले डकार के कार्य प्रारूप में भी प्राथमिक शिक्षा की पूर्णता की बात कही गई थी जिसे सबके लिए शिक्षा कार्यक्रम के लक्ष्यों में शामिल किया गया। गौरतलब है कि सबके लिए शिक्षा कार्यक्रम ने, अपने कार्यक्रम के लक्ष्य तय करते हुए शिक्षा में गुणवत्ता के संप्रत्यय को महत्त्वपूर्ण रूप से रेखांकित किया था। गुणवत्ता को शिक्षा की केन्द्रीय विषयवस्तु के रूप में स्वीकार किया गया। गुणवत्ता को बच्चों की शिक्षायी उपलब्धि अर्थात् बुनियादी अधिगम स्तर के साथ जोड़ा गया (यूनेस्को, 2000, लक्ष्य, 06)।

गौरतलब है कि उक्त संदर्भ में वैश्विक शिक्षायी विमर्श ने गुणवत्ता को एक प्रक्रिया के रूप में न समझ कर, एक उत्पाद के रूप में ही समझने की दिशा में पहल की।

डकार प्रारूप में एक महत्त्वपूर्ण बात यह रही कि इसने शिक्षा में गुणवत्ता के आयाम को सबके लिए आवश्यक रूप से अंगीकार किया। लैंगिक भेद, सामर्थ्य, स्थिति, भाषा, जाति एवं प्रजाति के भेद के बिना गुणवत्ता को देखने एवं समझने की बात कही।

इसी के विस्तृत आलोक में संयुक्त राष्ट्र के शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (2004 : 36) ने गुणवत्ता को एक इकाई न मानकर विभिन्न तात्विक आयामों में परिलक्षित किया। शिक्षार्थी, शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाएँ, संदर्भमूलक, उपलब्धि सूचक एवं आधारभूत सुविधाएँ संबंधी आयाम आदि के आधार पर गुणवत्ता के संप्रत्यय को समझने की कवायद शुरू हुई। गुणवत्ता के इसी विमर्श में सबके लिए शिक्षा कार्यक्रम ने शिक्षा विकास सूचक तैयार किया जिसमें शिक्षा में गुणवत्ता से अभिप्राय पाँच वर्षीय, प्राथमिक शिक्षा पूर्ण कर लेने से था (यूनेस्को, 2004 : 136)।

वैश्विक पटल से अलग यदि तीसरी दुनिया के समाजों की बात की जाए तो

उपरोक्त गुणवत्ता की अवधारणा कुछ हद तक स्वीकार्यता प्राप्त कर लेती है, क्योंकि इन समाजों में स्कूल जाने की आयु वर्ग के अधिकांश बच्चे पाँच वर्ष तक भी स्कूल में नहीं बने रह पाते हैं, लड़कियों की स्थिति इससे भी ज्यादा भयावह है।

हाल ही में प्रथम (2005) द्वारा किए गए सर्वे पर आधारित 'शिक्षा का वार्षिक स्थिति प्रतिवेदन' ने इस तथ्य को रेखांकित किया कि स्कूल जाने की उम्र के लगभग 14 मिलियन बच्चे स्कूलों से बाहर हैं, जिनमें एक बड़ा हिस्सा बालिकाओं का है। जो बच्चे 'सरकारी' स्कूली शिक्षा पूरी कर रहे हैं वे भी स्कूलों में लगातार बने रहने के बावजूद लिखने, पढ़ने एवं गणना के बुनियादी कौशल भी नहीं सीख पा रहे हैं (असर : 2007)।

इसमें कोई दो मत नहीं कि इनमें से अधिकांश बच्चों की पहचान उस समुदाय(यों) के रूप में है जो सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं, जो कि गाँवों, कस्बों, महानगरों की कच्ची बस्तियों से आते हैं (अरविन्द : 2010)।

गोविन्दा (2008), ने महत्त्वपूर्ण रूप से इस परिघटना; जो कि वैश्विक शिक्षायी नवाचारो का प्रतिफलन है; को इस समुदाय के शिक्षायी बहिष्करण के लिए उत्तरदायी माना है। इसी के बरक्स रसूल (2009), यह सवाल करते हैं कि 'कैसे एक बच्चा जिसके पास पर्याप्त मात्रा में सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक पूँजी नहीं है, वह शिक्षा के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय श्रम मापकों पर समतामूलक प्रतिस्पर्धात्मक भागीदारी कर सकता है।'

सरकारी स्कूलों में लगातार कम होती जा रही गुणवत्ता, मध्यवर्गीय सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चों का सरकारी स्कूलों में लगातार कम होता नामांकन, वंचित वर्ग (दलित, आदिवासी, ग्रामीण, अल्पसंख्यक, बालिका आदि) के बच्चों को ही अब सरकारी स्कूलों में देखा जा सकता है।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि 'सरकारी एवं निजी स्कूल' भारतीय समाज में जातिय, लिंगीय एवं आर्थिक भेद के नये 'रूपक एवं प्रतिमान' के रूप में अपनी जगह बनाते जा रहे हैं।

राष्ट्रीय साक्षरता की दरों में लगातार वृद्धि, लगातार बढ़ता बच्चों का नामांकन एवं उनकी 'भौतिक' उपस्थिति के बाद भी शिक्षा की गुणवत्ता का सवाल अनुत्तरित रह जाता है जिसका जवाब प्रायः नीति निर्धारकों एवं शिक्षाविदों द्वारा राज्य की सत्ता, स्कूली स्थिति, आधारभूत-अधोसंरचना, शिक्षण-अधिगम सामग्री की अनुपलब्धता, प्रशिक्षित, प्रेरित, एवं प्रतिबद्ध शिक्षकों का अभाव में तलाश किया जाता रहा है।

वस्तुत: भारतीय सामाजिक संदर्भ में गुणवत्ता की आयातित अवधारणा सटीक नहीं बैठती है। भारतीय समाज में जहाँ कक्षा विहीन, शिक्षक विहीन विद्यालयों से लेकर संसाधन सम्पन्न, उच्च दक्षता वाले न केवल निजी बल्कि सरकारी विद्यालयों के भी कई स्तर एवं तंत्र विद्यमान हैं, ऐसे में गुणवत्ता जैसे संप्रत्यय को विभिन्न खण्डों में बाँटकर देखना, समाज में व्याप्त सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक-राजनैतिक-शैक्षिक गैर बराबरी को ही समर्थन देने वाली प्रक्रिया साबित होती है।

उपरोक्त विमर्श इस बात को दिखाने का प्रयास है कि गुणवत्ता को लेकर हो रही वैचारिक बहस सही दिशा में नहीं है। गुणवत्ता को भी एक रेखीय प्रतिरूप में समझा जाता है; जिसमें आगत और निर्गत महत्त्वपूर्ण होता है जिसमें प्रक्रिया गौण हो जाती है; तो कभी प्रक्रिया को बेहद अगंभीरता तथा मनमाने ढंग से समझने का प्रयास होता है।

गुणवत्ता को कभी विभिन्न तात्विक घटकों में बाँटकर अलग-अलग देखा जाता है तो कभी गुणवत्ता क्या नहीं है, इसी पर बहस शुरू होती है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि गुणवत्ता के मसले पर एक विभ्रम की स्थिति बरकरार है। इस दिशा में जो भी प्रयास हुए हैं, वे एक खास किस्म के दायरे के भीतर ही दिखाई पड़ते हैं। यह प्रयास केवल यह स्पष्ट कर पाते हैं कि गुणवत्ता क्या नहीं है? गुणवत्ता क्या है, इस पर एक आश्चर्यजनक 'मौन' है।

भारत जैसे बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक, बहुस्तरीय पदानुक्रमिक विषमतामूलक समाज में गुणवत्ता को लेकर एक सहमति या व्याख्या अपने आप में एक ज्ञानमीमांसीय त्रुटि ही है। भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत संस्करण ने शैक्षिक अवसरों की उपलब्धता एवं उसकी गुणवत्ता को अपने ही ढंग से प्रभावित किया है। गुणवत्ता का मसला अपने मूलभूत स्वरूप में बुनियादी तैयार पर प्रक्रिया एवं सदर्भ से परिभाषित होता है। प्रक्रिया एक अनुभवपरक यथार्थ है जबकि संदर्भ सैद्धांतिक यथार्थ। इन दोनों के विलयन या समेकन से ही गुणवत्ता को उद्घाटित करने का प्रयास होना चाहिए।

दलित मात्र एक श्रेणी या अपने आप में एक वर्ग मात्र नहीं है बल्कि एक व्यापक 'सामाजिक प्रक्रिया' है जो कि अन्य सामाजिक प्रक्रियाओं और 'शिक्षा एवं समाज' में कार्यरत गत्यात्मकता से गहनतम रूप से अन्तर्संबंधित है। एप्पल और वाईज (1983) के अनुसार एक पूँजीवादी समाज में अवसरों की उपलब्धता एवं संरचना को तय करने में आर्थिक संबंध एक ताकतवर एवं प्रभावी भूमिका निभाते हैं किंतु आर्थिकता समाज में व्याप्त सामाजिक संबंधों को विरेचित नहीं करती है।

दलितों के संदर्भ में शिक्षायी गुणवत्ता के मुद्दे को भी उनकी आर्थिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक जीवन के साथ समग्रता में देखने की आवश्यकता है। दलित समुदाय में शिक्षायी गुणवत्ता को तीन आयामों में समझना होगा –

1. सामाजिक आयाम – (आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक)
2. शिक्षायी आयाम – (स्कूल, पाठ्यचर्चा, शिक्षक, शिक्षार्थी, मूल्यांकन)
3. गतिकी – (जाति, लिंग, वर्ग)

उपरोक्त तीनों आयाम एक त्रिविमीय प्रतिरूप में होते हैं। इनमें से किसी एक घटक को समझने के लिए तीनों आयामों की सापेक्षिक स्थिति की व्याख्या आवश्यक होती है। एप्पल और वाईज (1983:25) ने सामाजिक संबंधों को अपने सामानान्तर प्रतिरूप की सहायता से समझने का प्रयास किया था। उनके इसी प्रतिरूप को तीन विमीय स्वरूप में विकसित कर भारतीय समाज के दलित समुदाय के संदर्भ में शिक्षायी गुणवत्ता को बेहतर एवं समग्र रूप से समझने का सकारात्मक प्रयास किया जा सकता है।

शिक्षा में गुणवत्ता को उपरोक्त तीनों आयामों के बीच गत्यात्मक एवं संवादात्मक स्थिति के आधार पर ही वृहद रूप में समझा जा सकता है। यह प्रारूप गुणवत्ता की एक लोकतांत्रिक, नवाचारी, प्रगतिशील, समतामूलक जाँच कर सकता है जहाँ प्रत्येक घटक एक दूसरे के साथ तीन आयामों से अन्तर्क्रिया करते हैं। यह प्रतिरूप गुणवत्ता को समझने के लिए चली आ रही रेखीय परम्परा को रोकता है। इसकी अवधारणा शिक्षार्थी, समुदाय, शिक्षक, नीति निर्धारकों, राष्ट्री लक्ष्यों एवं योजनाओं इत्यादि के संदर्भ में गुणवत्ता की एक सारगर्भित समझ बनाती है।

नि:संदेह इस प्रारूप की अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं। मसलन इस प्रतिरूप को सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता। समाज में लिंग, जाति और वर्ग के अतिरिक्त भी अन्य कई महत्त्वपूर्ण गतिकी विद्यमान है। स्कूल तथा कक्षा कक्ष में होने वाली विभिन्न तरह के वंचनाओं को यह मॉडल दिखा पाने में असक्षम है किंतु उनके कारणों पर चर्चा करने में यह सक्षम है। इस प्रतिरूप के द्वारा गुणवत्ता के मुद्दे को समझते हुए शिक्षा में उसके क्रियान्वयन की दिशा में एक सशक्त एवं दिशागम्य प्रक्रिया से बढ़ा जा सकता है। जहाँ गुणवत्ता क्या है? इसी का जवाब नहीं मिलेगा बल्कि गुणवत्ता क्यों नहीं है इसका जवाब भी आसानी से उपलब्ध हो सकेगा।

मूलत: समस्या यह है कि अभी तक शिक्षायी गुणवत्ता को एक स्वरूप एवं प्रकृति में ही समझा जा रहा है। हमारा राष्ट्रीय चरित्र, एक क्षेत्र का दूसरे क्षेत्र से, एक समाज का

दूसरे समाज से, एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति से, पर्याप्त विविधता एवं विषमता लिए हुए है, ऐसे में तमाम घटकों, चरों को बिना समझे, बाह्य रूप से, समरूपता के साथ गुणवत्ता की कसौटी को आरोपित कर देना एक विभेदकारी प्रक्रिया ही है जिसमें गुणवत्ता को देखना एक छद्म स्वरूप में ही संभव हो सकता है।

भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत संस्करण ने शैक्षिक अवसरों की उपलब्धता एवं उसकी गुणवत्ता को अपने ही ढंग से प्रभावित किया है। दोपहर भोजन योजना गाँवों एवं समुदायों में व्याप्त भेद को स्कूलों में स्पष्ट: दिखाती है। गुणवत्ता का सवाल, शिक्षायी विमर्श की दिशाहीन बहस में एक शब्दाडम्बर बन गया है, क्योंकि यथार्थ में गुणवत्ता क्या है? क्या इसे एक साथ देखा जा सकता है? गुणवत्ता बाह्य गुण है या आंतरिक? गुणवत्ता प्रक्रिया है या उत्पाद? आदि को अनुभवपरक स्थिति में सही अर्थों एवं संदर्भों (विशेषत: दलितों के संदर्भ में) में अव्वल तो समझा ही नहीं जा सका है और जो कुछ प्रयास किए गए वे बुनियादी सवालों का जवाब भली-भाँति दे पाने में लगातार असमर्थ रहे हैं। गुणवत्ता का मसला अपने मूलभूत स्वरूप में बुनियादी तौर पर प्रक्रिया एवं संदर्भ से परिभाषित होता है। प्रक्रिया एक अनुभवपरक यथार्थ है जबकि संदर्भ सैद्धांतिक यथार्थ। इन दोनों के समेकन से ही गुणवत्ता को उद्घाटित करने का प्रयास समतामूलक समाज की स्थापना तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षायी परिवेश के निर्माण की दिशा में हो सकता है।

दलित या वंचित समुदाय के संदर्भ में गुणवत्ता एकमेव न होकर, कई सोपानों में विभाजित पूर्णता होती है। मुख्यधारा के समाज के लिए गुणवत्ता के मायने दलित समाज के उपरोत्तफ संदर्भ से पर्याप्त भिन्नता एवं विषमता लिए हुए होते है। एक बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक, बहुस्तरीय समाज में गुणवत्ता को उसी के बुनियादी संदर्भ एवं प्रक्रिया में समझे जाने की आवश्यकता है। ऐसा कर पाने पर ही हम शिक्षा की गुणवत्ता को परिभाषित करने एवं समझने तथा उसके लिए प्रयास करने की ईमानदार कोशिश कर सकेंगे।

संदर्भ

कुमार कृष्ण एवं पदमा, एम. सारंगपाणि (2004), 'हिस्टी ऑफ द क्वालिटी डिबेट', कंटम्परी एजूकेशन डॉयलाग, अंक 2:1, मानसून 2004

विंच, क्रिस्टोफर 'शैक्षिक गुणवत्ता की तलाश - निवेशों और उत्पादों का द्वंद्व', शिक्षा विमर्श, वर्ष 12/अंक 6/नवम्बर-दिसम्बर, 2010 - पृष्ठ 18-30

— वही —

बत्रा, पूनम (2005), 'वॉइस एण्ड एजेंसी ऑफ टिचर्स-मिसिंग लिंक इन एनसीएफ-05 : ईपीडबल्यू, अक्टूबर 1, 2006

विस्तृत अध्ययन के लिए देखें- शिक्षा रिपोर्ट, भारत सरकार, 1966, पृष्ठ-10, 40-41

पद्मा एम. सारंगपाणि का शिक्षा विमर्श, वर्ष 12/अंक 6/नवम्बर-दिसम्बर, 2010 - पृष्ठ 28-36, में प्रकाशित विश्लेषण 'गुणवत्ता के सरोकार- राष्ट्रीय व राष्ट्र से परे के आयाम' को देखा जा सकता है।

कृष्ण कुमार, 'शिक्षा में गुणवत्ता- एक विवादास्पद अवधारणा', शिक्षा विमर्श, वर्ष 12/अंक 5/सितम्बर-अक्टूबर, 2010 - पृष्ठ 5-11

सद्गोपाल, अनिल (2006), 'डायल्यूशन, डिस्टोर्शन एण्ड डायवर्जन : अ पोस्ट-ज्योमितियन रिफ्रलेक्शन ऑन द एजूकेशन पॉलिसी' इन 'द क्राइसिस ऑफ एलेमेन्ट्री एजूकेशन इन इंडिया' (सं.), रवि कुमार, पृ. 92-136, न्यू दिल्ली, सेज पब्लिकेशन

अरविन्द, गेसू (2010), 'कॉलोनिज्म, मॉडर्निज्म एण्ड नियो-लिबरलिज्म : प्रॉब्लमेटाइजिंग एजूकेशन इन इंडिया', हैण्डबुक ऑफ एशियन एजूकेशन : अ कल्चर पर्सपेक्टिव, पाठ-28, 2010, न्यू यॉर्क : रूटलेज

गोविंदा, आर. (2008), 'इंडिया : कंट्री केस स्टडी', कंट्री प्रोफाइल कमीशन्ड फॉर द ईएफए ग्लोबल मॉनीटरिंग रिपोर्ट : ईएफए-2015 : विल वी मेक इट?

एन. रसूल (2009), 'इक्विटी एण्ड सोशल जस्टिस डिस्कोर्स इन एजूकेशन', इन नॉलेज, वेल्यू एण्ड एजूकेशनल पॉलिसी : अ क्रिटिकल पर्सपेक्टिव (संपादित), एच. डेनियल, लाउडर एण्ड पॉर्टर, पृ. 126-137, ऑक्सन : रूटलेज

रामपाल, अनिता (2004), 'अनपैकिंग द 'क्वालिटी' ऑफ स्कूल्स', सेमीनार, 536 अप्रैल, न्यू दिल्ली

यूनिसेफ (2000) : डिफाइनिंग क्वालिटी इन एजूकेशन, न्यू दिल्ली

यूनिसेफ (2002) : अ क्वालिटी एजूकेशन फॉर आल, न्यू दिल्ली

सबके लिए शिक्षा की वैश्विक घोषणा (ज्योमितियन घोषणा) 1990 :
http://www.unesco.org/education/efa/ed_for_all/background/jomtein_declaration.shtml

भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968, मानव संसाधन विकास मंत्रालय

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 17, अंक 3, दिसंबर 2010

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के कार्यान्वयन में पंचायतीराज संस्थाओं की भूमिका

अश्वनी*

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 भारतीय शिक्षा इतिहास का प्रमुख मौलिक बदलाव की दिशा में एक उल्लेखनीय कदम है। इस अधिनियम के कार्यान्वयन में स्थानीय प्राधिकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका को माना गया है और उसके अधिकार एवं कर्त्तव्यों की स्पष्ट व्याख्या की गई है। शिक्षा के अधिकार के कार्यान्वयन में विभिन्न समस्याओं पर हर रोज चर्चा हो रही है। दूसरी ओर व्यावहारिक रूप में, सामान्य तौर पर पाया गया है कि पंचायती राज संस्थाएं अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों से या तो अनभिज्ञ हैं अथवा पूर्णत: सक्रिय न होकर औपचारिकताओं का निर्वाह कर रही हैं। मुख्यतया इनका कार्य रख-रखाव से अधिक जुड़ गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में इस संपूर्ण संदर्भ में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के कार्यान्वयन में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका का समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

स्वतंत्र भारत में पंचायती राज की पुनर्स्थापना के लिए **बलवंत राय मेहता समिति** (1957) गठित की गई थी। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर ही त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था शुरू की गई थी। बलवंत राय मेहता समिति सभी विकास एवं कल्याणकारी योजनाओं की क्रियान्विति स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से चाहती थी। समिति ने सामाजिक शिक्षा को स्थानीय पंचायती राज के कार्यों में शामिल किया था। पंचायती राज की त्रि-स्तरीय संरचना से सामुदायिक सहभागिता हर स्तर पर देने की कोशिश समिति ने की थी। **अशोक मेहता समिति (1977)** ने भी सिफारिश की कि इन संस्थाओं को बदलती परिस्थितियों और नये संदर्भों में व्यापक स्तर पर कार्य सौंपे जाएं। हनुमंत राव समिति (1983) ने पुरजोर शब्दों में कहा कि स्थानीय स्तर पर योजना

* सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विज्ञान, मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय, हैदराबाद, आंध्रप्रदेश

की दृष्टि से जनभागीदारी अति महत्त्वपूर्ण ही नहीं, अपितु इसे अभिन्न अंग के रूप में देखा जाना चाहिए और पंचायती राज को इसी परिप्रेक्ष्य में देखना उपादेय होगा। जी.वी. के. राव समिति (1985) ने भी जिला स्तर की योजना बनाने में जन सामान्य की भागीदारी पर जोर दिया। इससे स्थानीय संस्थाओं की स्वायत्तता, प्रशासनिक दक्षता तथा योजना के सूक्ष्म पहलुओं को समझने की क्षमता में वृद्धि होगी। इन विभिन्न समितियों की सिफारिशों के फलस्वरूप ही भारतीय संविधान में 73वाँ संशोधन किया गया और 24 अप्रैल 1993 को 'पंचायती राज अधिनियम' बना। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा स्वतंत्र भारत में पंचायती राज व्यवस्था को वैधानिक स्तर प्रदान किया गया। इस अधिनियम के द्वारा संविधान के भाग 9 में 16 अनुच्छेदों व 11वीं अनुसूची को शामिल किया गया। संविधान में सम्मिलित 11वीं अनुसूची में सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति हेतु 29 विषयों को सूचीबद्ध किया है, जिन पर पंचायती राज संस्थाओं को कार्य करना है। शिक्षा से संबंधित इसमें विषय हैं- शिक्षा, जिसके अंतर्गत प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय भी हैं, तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा। प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय, महिला और बाल विकास, समाज कल्याण जिसके अंतर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मंद व्यक्तियों का कल्याण भी है, दुर्बल वर्गों का और विशिष्टतया अनुसूचित जातियों और जनजातियों का कल्याण। इस तरह यह अनुसूची संपूर्ण विकास के प्रतिमान का प्रतिबिंब है।

कोठारी कमीशन (1964-66) ने माना है कि शिक्षा अवश्य ही राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है तथापि यह राष्ट्रीय महत्त्व का विषय भी है और शिक्षा क कुछ बड़े क्षेत्रों में राष्ट्रीय स्तर पर ही निर्णय करने होंगे। दूसरी ओर यह भी स्मरण रखना होगा कि शिक्षा का संबंध प्रत्येक माता-पिता और परिवार से है और उसे जन साधारण के निकट संपर्क में रखना चाहिए और उसका सर्वोत्तम प्रशासन स्थानीय जनसमुदाय के द्वारा अथवा उसके घनिष्ठ सहयोग से ही संचालित हो सकता है। स्कूली शिक्षा प्रमुखत: स्थानीय सरकार और राज्य की साझेदारी है, जबकि उच्च शिक्षा केन्द्र तथा राज्य की साझेदारी है। केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें, स्थानीय स्वायत्त निकाय और स्वैच्छिक संस्थाओं के कार्य क्षेत्र को निर्धारित कर देना चाहिए। इस तरह कोठारी कमीशन ने भी देहाती क्षेत्रों में स्थानीय स्कूलों को ग्राम पंचायतों के साथ सहयोजित करने को महत्त्वपूर्ण माना है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में इस संबंध में विचार किया गया है कि पूरे देश में प्राथमिक विद्यालयों की दशा को सुधारने के लिए एक क्रमिक अभियान किया जाएगा, जिसका

सांकेतिक नाम 'ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड' होगा। इस कार्य में शासन, स्थानीय निकाय, स्वयं सेवी संस्थाओं और व्यक्तियों की पूरी भागीदारी होगी। अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों को चलाने का अधिकतर कार्य स्वयंसेवी संस्थाएं और पंचायती राज की संस्थाएं करेंगी। शिक्षा की आयोजना और प्रबंध में लोक भागीदारी को प्रधानता दी जाएगी। विकेन्द्रीकरण तथा शिक्षा संस्थाओं में स्वायत्तता की भावना उत्पन्न की जाएगी। राममूर्ति समिति (1990) के अनुसार, विकेन्द्रीकरण का मतलब केवल विभिन्न सोपानों पर संगठन की संरचनाएं बनाना नहीं है। यह वस्तुत: संरचनात्मक व्यवस्था-क्रम में केन्द्र से राज्यों को, राज्यों से जिलों को और इसी तरह गांवों तक अधिकारों, प्रकार्यों और संसाधनों को सौंपना है। यह विकेन्द्रीकरण - योजना निर्माण, संसाधन विनिधान, कार्यान्वयन, सभी पक्षों में दिखाई देना चाहिए। विकेन्द्रीकरण केवल सरकारी संरचनाओं तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि विश्वविद्यालयों, कॉलेजों और स्कूलों में प्राइमरी स्तर तक सभी शिक्षा संस्थाओं में होना चाहिए। कार्यान्वयी योजना में विचार किया गया है कि उच्च माध्यमिक शिक्षा तक का प्रबंधन पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित कर दिया जाए। 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के संदर्भ में ''शिक्षा का विकेन्द्रित प्रबंध'' पर CABE कमेटी 1993 में श्री वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में बनाई थी। समिति ने पंचायती राज के तीनों स्तर के लिए शिक्षा प्रबंध संबंधी व्यापक दिशा-निर्देश बनाए। इस समिति ने ग्रामीण लोगों की शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ग्रामीण शिक्षा समिति को एक आदर्श संगठन माना है। गांव में समुदाय के सहयोग से पूर्व बाल अवस्था शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, निरौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा को प्रायोजित किया जा सकता है। ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद की स्थानीय शिक्षा समिति भी बनानी चाहिए। जो कि ग्रामीण समुदाय में अध्यापक और समुदाय की सहभागिता बढ़ाए। राज्य सरकारों को पंचायती राज संस्थाओं के कार्य की रूपरेखा बनानी चाहिए और सभी क्षेत्रों के पर्यवेक्षण और अवशिष्ट शक्तियां भी संबंधित संदर्भ में देनी चाहिए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 ने व्यापक स्तर पर विवेचना की है कि पंचायती राज संस्थाओं के क्रियाकलापों में अस्पष्टता और दोहराव है। कार्यक्रमों में ग्राम सभा की कोई भागीदारी नहीं है। पंचायती राज संस्थाओं और शैक्षिक नौकरशाही के बीच भूमिका की कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं है। कार्यों और उपलब्ध धन को लेकर कोई समन्वय नहीं है। अभी भी विद्यालय समुदाय तक नहीं पहुंचे हैं। विकेन्द्रीकरण का मतलब है इमारत के बजाय विद्यालय समुदाय के नजदीक आये। आवश्यक लचीलापन और स्वायत्तता,

शिक्षा व्यवस्था में जरूरी है जो कि योजना बनाने, निधि वितरित करने, प्रशासनिक नियम निर्देश बनाने, अकादमिक सहायता करने और स्वायत्त निर्णय प्रक्रिया में निचलने स्तर पर बहुत सहायता करेगी।

प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने 24 अप्रैल, 2008 को जिला परिषद व पंचायत समिति अध्यक्षों के राष्ट्रीय सम्मेलन में कहा था कि पंचायतें ''सभी के लिए शिक्षा'' अभियान में स्थानीय स्कूलों के प्रबंध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इन प्रयासों के तहत अब हम देश के सभी रिहायशी भागों में स्कूल खोल सकते हैं। हमने पूरे देश में मीड-डे-मिल योजना शुरू की है और पंचायतें इसके कार्यान्वयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। पोषण खाद्य कार्यक्रमों में खास ध्यान देने की जरूरत है। अंतर्निहित बाल विकास योजना में भी स्थानीय पंचायतों को शामिल करना चाहिए। इस तरह पंचायतों की सहभागिता को सीधे तौर पर शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे कार्यक्रमों में महत्त्व दिया जा रहा है। इस तरह से पंचायती राज और शिक्षा : एक संभावित अवधारणा के रूप में उभरी हैं। अमर्त्य सेन, ज्यां द्रेज़ (2000) का मानना है कि ग्रामीण स्कूलों के अध्यापकों के अनुपस्थित रहने की समस्या का समाधान सबसे निकटस्थ संस्था अर्थात स्थानीय जन समुदाय के सहयोग के बिना संभव नहीं हो सकता। इसलिए ग्रामीण शिक्षक को स्थानीय स्वशासन के प्रति जवाबदेह बनाना जरूरी है। डकार फ्रेमवक्र फॉर एक्शन (2000) में भी कहा गया है कि सभी के लिए शिक्षा मानवीय अधिकार है। 21वीं सदी में स्थायी विकास और शांति पाने के लिए शैक्षिक विकास को रूप देना, लागू करना और पर्यवेक्षण करने की नीति बनाने में समाज की सहभागिता और जुड़ाव जरूरी है। एक उत्तरदायित्व व जिम्मेदारी भरा सहभागिता युक्त शैक्षिक शासन और प्रबंध बनाना जरूरी है।

मार्क ब्रे (1999) के अनुसार शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता नीति प्रारूप निर्माण, संसाधनों की गतिशीलता, पाठ्यचर्चा विकास, अध्यापकों की नियुक्ति व पदावनति, पर्यवेक्षण, वेतन का भुगतान, अध्यापक प्रशिक्षण, पाठ्यपुस्तकें तैयार करना, पाठ्यपुस्तकों का वितरण, प्रमाणीकरण, निर्माण और मरम्मत इत्यादि विषयों में सामुदायिक सहभागिता का महत्त्व है। इस तरह माक्र ब्रे ने शिक्षा के सभी पहलुओं में सामुदायिक सहभागिता को स्वीकारा है। साथ ही ध्यान दिलाया है कि सहभागिता विश्वसनीय हो, यह दोनों तरफ से हो अर्थात सरकार समुदाय पर और समुदाय सरकार पर विश्वास करे। इस तरह ग्रामीण परिवेश में सामुदायिक सहभागिता का माध्यम पंचायती राज एक सशक्त माध्यम है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009

भारतीय संविधान की धारा 45 में नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक नीति-निर्देशक सिद्धांत घोषित किया गया था - राज्य इस संविधान के कार्यान्वित किए जाने के समय से 10 वर्ष के अंदर सभी बच्चों के लिए, जब तक वे चौदह वर्ष की आयु पूर्ण नहीं कर लेंगे, नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। लेकिन लगभग 63 वर्ष बीतने के बाद भी यह काम नहीं हो पाया है।

संसद ने 4 अगस्त, 2009 को बच्चों का नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित किया। इसके साथ ही देश के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्राप्त हो गया है। इस अधिनियम के बुनियादी प्रावधानों पर एक नजर:

- यह ऐतिहासिक अधिनियम इस बात का प्रावधान करता है कि 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को अपने पड़ोस के विद्यालय में प्रारंभिक शिक्षा नि:शुल्क और अनिवार्य रूप से पाने का अधिकार है।
- यह अधिनियम नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के केन्द्र और राज्य सरकारों के दायित्व को रेखांकित करता है।
- निजी स्कूलों में गरीबों और वंचितों के बच्चों के लिए 25 फीसदी सीटों का आरक्षण जरूरी है। अधिनियम में हर तरह की विकलांगता से प्रभावित बच्चों की शिक्षा का प्रावधान भी किया गया है।
- प्रत्येक अभिभावक का यह दायित्व होगा कि वह 6 से 14 वर्ष तक के अपने बच्चों को विद्यालय में पढ़ने के लिए भर्ती कराए।
- विद्यालयों के काम काज की निगरानी विद्यालय प्रबंधन समितियों के माध्यम से की जाएगी।
- किसी भी बच्चे की प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण होने से पूर्व बोर्ड की कोई भी परीक्षा नहीं देनी होगी। प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण करने वाले प्रत्येक बच्चे को प्रमाण-पत्र दिया जाएगा।
- अध्यापक-छात्र अनुपात सही रहना चाहिए।
- शिक्षा की गुणवत्ता सुधारी जाए।
- स्कूल अध्यापकों को 5 साल के अंदर अध्यापक प्रशिक्षण डिग्री प्राप्त करनी आवश्यक है।

- स्कूल की भौतिक सुविधाओं को सुधारा जाए।
- वित्तीय भार राज्य व केन्द्र सरकार की जिम्मेदारी है।
- स्कूल और अध्यापकों के उत्तरदायित्वों की स्पष्ट व्याख्या की गई है।
- प्रारंभिक शिक्षा की पाठ्यचर्या की विषय वस्तु और मूल्यांकन के लिए दिशानिर्देश दिये गये हैं।
- बाल अधिकार संरक्षण अधिनियम 2005 के प्रावधानों के अंतर्गत गठित राष्ट्रीय/राज्य बाल संरक्षण आयोग अपने निर्धारित कार्यों के अतिरिक्त इस अधिनियम के तहत प्रदत्त अधिकारों का परीक्षण और देखभाल की समीक्षा करेंगे और उन पर प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिश करेंगे।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में स्थानीय प्राधिकार संबंधी प्रावधान

अध्याय 1 में धारा 2 (h) में स्थानीय प्राधिकार का अर्थ है कि म्युनिसिपल कॉरपोरेशन, म्युनिसिपल काउंसिल, जिला परिषद, नगर पंचायत, पंचायत और कोई नाम हो सकता है और इसमें अन्य प्राधिकार और निकाय शामिल हैं जो कि कानून द्वारा स्कूलों पर प्रशासनिक नियंत्रण के लिए सशक्त किया हो या कुछ समय के लिए किसी भी कानून के अंतर्गत स्थानीय प्राधिकार की तरह किसी भी शहर, टाउन या गांव में हो सकता है।

अध्याय 3 में धारा 6 में है कि इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकार पड़ोस और अपने क्षेत्र की सीमाओं में, जहां पर स्कूल नहीं हैं, इस अधिनियम के लागू होने के तीन साल की अवधि में स्कूल स्थापित करेगा। अध्याय 3 में धारा 9 में स्थानीय प्राधिकार के कर्त्तव्य बताये गये कि प्रत्येक स्थानीय प्राधिकार प्रावधान करेगा कि–

क. नि:शुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा प्रत्येक बच्चे को उपलब्ध कराना।

ख. पड़ोस में विद्यालय की सुविधा सुनिश्चित करना।

ग. यह सुनिश्चित करना कि कमजोर और वंचित वर्गों के बच्चों के साथ प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने में और उसे पूरी करने पर किसी भी तरह का कोई भेदभाव नहीं हो।

घ. अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत रहने वले 14 वर्ष तक के बच्चों का रिकार्ड बनाए रखना।

ड· त्रयह सुनिश्चित करना कि दाखिला का अनुवीक्षण, उपस्थिति और अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत रहने वाला प्रत्येक बच्चा प्रारंभिक शिक्षा पूरी करे।

च. विद्यालय भवन, शिक्षक और अधिगम सामग्री सहित आधारभूत संरचना की उपलब्धता सुनिश्चित करेगी।

छ. विशेष प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध कराना।

ज. अच्छी गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक शिक्षा मानक और प्रतिमानक के अनुसार उल्लिखित अनुसूची के अनुसार सुनिश्चित करना।

झ. प्रारंभिक शिक्षा के अध्ययन के लिए पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को समय पर निर्धारित करने को सुनिश्चित करना।

ञ. शिक्षकों को प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध कराना।

ट. प्रवासी परिवारों के बच्चों का दाखिला सुनिश्चित करना।

ठ. अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत स्कूलों की कार्यप्रणाली का अनुवीक्षण करना।

ड एकेडमिक कैलेंडर का निश्चय करना।

धारा 21 (1) स्कूल में एक स्कूल प्रबंध समिति का निर्माण किया जाएगा, जिसमें स्थानीय प्राधिकार के चयनित प्रतिनिधि, स्कूल में दाखिल बच्चों के अभिभावक और संरक्षक और शिक्षक होंगे।

धारा 21 (1) में कहा गया है कि स्कूल प्रबंध समिति निम्न कार्य करेगी :

क. स्कूल की कार्यप्रणाली का अनुवीक्षण।

ख. स्कूल विकास योजना का निर्माण व सिफारिश करना।

ग. समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकार या किसी अन्य स्रोत से प्राप्त अनुदान के उपयोग का अनुवीक्षण करना।

घ. दिये गये अन्य साधिकार कार्य करना।

धारा 21 (1) के अनुसार, स्कूल विकास योजना उचित सरकार या स्थानीय प्राधिकार द्वारा बनाई व तैयार की गई योजनाओं और अनुदान के आधार पर बनाई जाएगी।

धारा 25 (1) के अनुसार, यह अधिनियम लागू होने के छः महीने के अंदर समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकार यह सुनिश्चित करेगा कि छात्र–अध्यापक अनुपात उल्लिखित अनुसूची के अनुसार प्रत्येक स्कूल में बनायी रखी जाए।

धारा 26 के अनुसार, स्कूल स्थापित करने वाली नियोक्ता प्राधिकार जो कि स्वामित्व, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से समुचित सरकार या स्थानीय सरकार द्वारा वित्तपोषित है,

यह सुनिश्चित करेगा कि उसके नियंत्रण में स्कूल में कुल संस्वीकृत पदों से दस प्रतिशत अधिक नहीं है।

धारा 32 में कहा है कि धारा 31 के उपबंधों के होते हुए भी यद्यपि स्थानीय प्राधिकार के क्षेत्राधिकार में बच्चों के अधिकार के अंतर्गत इस अधिनियम के अनुसार लिखित शिकायत कोई भी व्यक्ति कर सकता है।

अध्याय 7 में धारा 35 (3) में कहा है कि इस अधिनियम के प्रावधानों के कार्यान्वयन करने के लिए समुचित सरकार स्कूल प्रबंध समिति और स्थानीय प्राधिकार के लिए दिशा निर्देश बनायेगी और जो उचित समझे निर्देशन इस संबंध में देगी।

अध्याय 7 धारा 3 में कहा है कि इस अधिनियम के प्रावधानों के कार्यान्वयन करने के लिए स्थानीय प्राधिकार स्कूल प्रबंध समिति के लिए दिशा निर्देश बनायेगी और जो उचित समझे निदेशन इस संबंध में देगी।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (विद्यालय शिक्षा और साक्षरता विभाग) की अधिसूचना (8 अप्रैल, 2010) में केन्द्रीय सरकार ने नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार 2009 की धारा 38 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए नियम बनाये हैं जिन्हें नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार नियम 2010 कहा गया है।

भाग-2 विद्यालय प्रबंध समिति के नियमों में कहा गया है कि इस समिति की सदस्य संख्या का पचहत्तर प्रतिशत बालकों के माता-पिताओं या संरक्षकों में से होगा। शेष 25 प्रतिशत में से एक तिहाई सदस्य स्थानीय प्राधिकार के निर्वाचित सदस्यों में से होंगे, जिनका विनिश्चय स्थानीय प्राधिकार द्वारा किया जाएगा।

उक्त समिति, धारा 21 की उपधारा (2) के खंड (क) से खंड (घ) में विनिर्दिष्ट कृत्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित कृत्यों का पालन करेगी, अर्थात-

क. अधिनियम में यथा प्रतिपादित बालक के अधिकारों के साथ ही समुचित सरकार, स्थानीय प्राधिकार, विद्यालय, माता-पिता और संरक्षक के कर्त्तव्यों को भी विद्यालय के आस-पास की जनसाधारण को सरल और सृजनात्मक रूप में संसूचित करना।

ख. धारा 24 के खंड (क) और खंड (ङ) तथा धारा 28 का कार्यान्वयन सुनिश्चित करना।

ग. इस बात को मॉनिटर करना कि अध्यापकों पर धारा 27 में विनिर्दिष्ट कर्त्तव्यों से भिन्न और शैक्षिक कर्त्तव्यों का भार न डाला जाए।

घ. विद्यालय में आस–पास के सभी बालकों के नामांकन और निरंतर उपस्थिति को सुनिश्चित करना।

ङ· अनुसूची में विनिर्दिष्ट सन्नियमों और मानकों के बनाए रखने को मॉनिटर करना।

च. बालक के अधिकारों से किसी विचलन को, विशेष रूप से बालकों के मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न, प्रवेश से इंकार किए जाने और धारा 3 की उपधारा (2) के अनुसार नि:शुल्क हकदारियों के समयबद्ध उपबंध को स्थानीय प्राधिकारी की जानकारी में लाना।

छ. आवश्यकताओं का पता लगाना, योजना तैयार करना और धारा 4 के उपबंधों के कार्यान्वयन को मॉनिटर करना।

ज. नि:शक्ताग्रस्त बालकों की पहचान और नामांकन तथा उनकी शिक्षा की सुविधाओं को मॉनिटर करना।

झ. विद्यालयों में दोपहर के भोजन के कार्यान्वयन को मॉनिटर करना।

ञ. विद्यालय की प्राप्तियों और व्यय का वार्षिक लेखा तैयार करना।

विद्यालय प्रबंध समिति विद्यालय विकास योजना तैयार करके अंत से पूर्व स्थानीय प्राधिकार को प्रस्तुत किया जाएगा।

भाग 3–5 (1) नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार के अनुसार समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी के स्वामित्वाधीन और प्रबंधनाधीन किसी विद्यालय की विद्यालय प्रबंध समिति विशेष प्रशिक्षण की अपेक्षा करने वाले बालकों की पहचान करेगी और प्रशिक्षण आयोजित करेगी।

भाग 4–1 (6) केन्द्रीय सरकार, समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारी के कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व में निम्न हैं–

1. आसपास के क्षेत्र या सीमाएं, जिनके भीतर समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकार द्वारा कोई विद्यालय स्थापित किया जाना है, कक्षा 1 से 5 के बालकों के लिए एक किलोमीटर व कक्षा 6 से 8 के बालकों के लिए तीन किलोमीटर की पैदल दूरी के भीतर स्थापित किया जाए।
2. समुचित सरकार या स्थानीय सरकार, जहां कहीं आवश्यक हो, उक्त विद्यालयों को प्रोन्नत कर सकती है।

3. कठिन भू-भाग, भूस्खलनों, बाढ़ के जोखिम, कम सड़कों वाले स्थानों में इस तरह विद्यालय अवस्थित करें, जिससे ऐसे खतरों से बच सके।
4. यदि आस-पास के क्षेत्र या सीमाओं के भीतर कोई विद्यालय विद्यमान नहीं है तो समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकार विद्यालय में प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के लिए नि:शुल्क परिवहन और आवासीय सुविधाओं जैसी पर्याप्त व्यवस्थाएं करेगा।
5. सघन जनसंख्या वाले स्थानों में, समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकार, ऐसे स्थानों में 6-14 वर्ष की आयु समूह के बालकों की संख्या को ध्यान में रखते हुए आस-पास के एक से अधिक विद्यालयों की स्थापना के बारे में विचार करेगा।
6. स्थानीय प्राधिकार आस-पास के ऐसे विद्यालयों का पता लगाएगा, जहां बालकों को प्रवेश दिया जा सकता है और प्रत्येक आवास के लिए ऐसी सूचना को सार्वजनिक करेगा।
7. ऐसी नि:शक्ता से ग्रस्त बालकों के संबंध में, जो उन्हें विद्यालय में पहुंचने से रोकती है, समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी उन्हें विद्यालय में उपस्थित होने और प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने में समर्थ बनाने के लिए समुचित और सुरक्षित परिवहन व्यवस्था करने का प्रयास करेगा।
8. समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकार यह सुनिश्चित करेगा कि बालकों की विद्यालय तक पहुंच सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों से प्रतिबाधित न हो।

भाग 4 (9) में दिया गया है कि निर्दिष्ट समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी के विद्यालय में उपस्थित होने वाला कोई भी बालक नि:शुल्क शिक्षा और विशेष रूप से नि:शुल्क पाठ्यपुस्तकों, लेखन-सामग्रियों और वर्दियों के लिए हकदार होगा और नि:शक्ता से ग्रस्त कोई बालक नि:शुल्क विशेष विद्या और सहायक सामग्री के लिए भी हकदार होगा। समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि विद्यालय में कोई भी बालक जाति, वर्ग, धार्मिक या लिंग संबंधी दुर्व्यवहार के अध्यधीन नहीं हो। किसी कमजोर वर्ग के किसी बालक और अलाभप्रद समूह के किसी बालक को कक्षा में, दोहपर के भोजन के दौरान, खेल के मैदानों में, सामान्य पेयजल और प्रसाधन सुविधाओं के उपयोग में तथा शौचालय या कक्षाओं की सफाई में अलग न रखा जाए या उसके विरुद्ध विभेद न किया जाए।

स्थानीय प्राधिकार अपनी अधिकारिता के अधीन सभी बालकों का घरेलू सर्वेक्षण द्वारा उनके जन्म से 14 वर्ष की आयु प्राप्त करने का एक अभिलेख रखेगा और उसे वार्षिक रूप से अद्यतन किया जाएगा। अभिलेख को सार्वजनिक क्षेत्र में पारदर्शी रूप से रखा जाएगा। विद्यालयों में नामांकित बालकों के नाम प्रत्येक विद्यालय में सार्वजनिक रूप से संप्रदर्शित किये जाए।

अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा अधिनियम के कार्यान्वयन में पंचायती राज संस्थाओं की निम्न भूमिका हो सकती है :

- शिक्षा के अधिकार का मुख्य उद्देश्य है कि 6 से 14 वर्ष तक के बच्चे को प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य रूप से मिले। ग्राम पंचायतों के द्वारा विद्यालयों में बच्चों का पंजीकरण व दाखिला करवाने में बहुत मदद की जा सकती है। ग्राम सभा की बैठक में भी अभिभावकों को विद्यालयों में दाखिला के लिए प्रोत्साहित व अभिप्रेरित किया जा सकता है। ग्राम सभा एक ऐसा मंच है जहां पर ग्रामीणों को बच्चों की शिक्षा के महत्त्व पर विचार–विमर्श करके उनकी समस्याओं के समाधान के बारे में भी सुझाव दिये जा सकते हैं। ग्राम पंचायत अपने क्षेत्र के परिवारों को सामाजिक तौर पर जानती है। उनकी आर्थिक, पारिवारिक, भौगोलिक व मनोवैज्ञानिक समस्याओं को समझकर समाधान निकाल सकती है जिससे वह प्रत्येक बच्चे को स्कूल में पहुंचाने की जिम्मेदारी पूरी कर सकती है। दाखिला प्रक्रिया अभियान में पंचायती राज संस्थाओं के साथ अध्यापकों को मिलकर गांवों में घर–घर जाकर आंकड़े एकत्रित करने चाहिए जिससे हर बच्चे को विद्यालय पहुंचा सकें।
- पंचायती राज संस्थाओं द्वारा विद्यालय की बुनियादी आवश्यकताओं व सुविधाओं पर ध्यान दिया जाना जरूरी है। जैसे कि पीने का पानी, बिजली, खेल का मैदान, स्कूल जाने का रास्ता, भवनों की मरम्मत, शौचालय आदि। कुछ अध्ययनों में पाया गया है कि विद्यालयों में शौचालयों की कमी से अभिभावक स्कूलों में लड़कियों को पढ़ने के लिए नहीं भेजते हैं। ये सभी सुविधाएं ग्राम पंचायतों की पहुंच में होती हैं, जिससे वे अपने प्रयास से भी इन्हें उपलब्ध करा सकती हैं। अगर ग्रामीण स्कूलों में बुनियादी आवश्यकता होगी तो हम प्रारंभिक शिक्षा में अपव्यय व अवरोधन को भी रोक सकते हैं। सर्वशिक्षा अभियान के तहत ग्रामीण विद्यालयों में बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराई गई हैं। बिहार शिक्षा परियोजना, हरियाणा प्राथमिक शिक्षा परियोजना, झारखंड शिक्षा परियोजना परिषद इत्यादि

राज्य स्तरीय योजनाएं इस दिशा में सक्रिय हैं। पंचायती राज संस्थाओं की इनमें स्पष्ट भूमिका होनी चाहिए।

- पंचायती राज संस्थाओं द्वारा अनुसूचित जाति/जनजाति, पिछड़े वर्ग के बच्चे, लड़कियों की शिक्षा, शारीरिक रूप से विकलांग, विशेष रूप से सहायता प्राप्त बच्चों की शिक्षा की ओर ध्यान दिया जा सकता है। ग्रामीण समाज में अभी भी अनुसूचित जाति/जनजाति के साथ सामाजिक भेदभाव विद्यमान है। लड़कियों को अभी भी विद्यालयों में नहीं भेजा जाता, क्योंकि वे घर का काम करती हैं या अपने छोटे भाई-बहनों की देखभाल करती हैं। विकलांग बच्चों को तो समाज का अंग ही नहीं माना जाता है। इस तरह की विद्यमान समस्याओं को समाप्त करके वंचित वर्ग को शिक्षा उपलब्ध करानी चाहिए। अभिभावकों को प्रेरित करके समुदाय में चेतना जागृत करके ग्राम पंचायतों द्वारा शिक्षा को सभी तक पहुंचाया जा सकता है।
- स्कूल प्रबंधन समिति द्वारा विद्यालयों का प्रबंध देखा जाएगा। इसमें पंचायती राज संस्थानों की भी अहम भूमिका रहेगी। स्कूल प्रबंध समिति में ग्राम पंचायतों द्वारा स्थानीय ग्रामीण शिक्षा की समस्याओं को उठाया जा सकता है, वह उसके समाधान के लिए संसाधनों का भी सुझाव दे सकती है। प्रबंध समिति से विद्यालय और ग्राम पंचायत का घनिष्ठ संबंध हो सकता है। विद्यालय प्रशासन द्वारा भी ग्राम पंचायतों को विद्यालय में सहयोग के लिए प्रेरित करना चाहिए। इस तरह स्कूलों का प्रबंध स्थानीय स्व-शासन संस्थाओं और जनभागीदारी से किया जाएगा। इसलिए पंचायती राज संस्थाओं के द्वारा स्कूल प्रबंध की समस्याओं का जमीनी स्तर पर ही समाधान किया जा सकता है। लेकिन यहाँ यह आवश्यक हो जाता है कि प्रबंधन का तात्पर्य केवल अध्यापकों का विद्यालय नियमित रूप से आने जाने तक सीमित नहीं समझा जाए।
- पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण क्षेत्र के स्कूलों में गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। सरकारी स्कूलों में केवल औपचारिकतावश ही पढ़ाई होती है। बच्चों को केवल साक्षर नहीं बनाना है, बल्कि उसे आज के प्रतियोगिता से परिपूर्ण वातावरण के हिसाब से गुणवत्तापूर्ण व उपयोगी शिक्षा देनी जरूरी है। शोधकर्ता ने एम.फिल. के अपने अध्ययन में पाया कि सरकारी विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या कम होती जा रही है। गांववासी सरकारी स्कूलों की अपेक्षा निजी स्कूलों की पढ़ाई पर ज्यादा भरोसा कर रहे हैं। गांव के निम्न

मध्यम दर्जे के किसान भी किसी तरह बच्चों की फीस का प्रबंध करके निजी स्कूलों में ही बच्चों को पढ़ाते हैं। सरकारी स्कूलों में अनुसूचित जाति व पिछड़े वर्ग के बच्चों की संख्या ज्यादा है। सरकारी स्कूलों में केवल वे ही बच्चे पढ़ रहे हैं जिनके अभिभावक प्राइवेट स्कूलों की फीस देने में असमर्थ हैं। यह एक तरह का दुष्चक्र है, जिसमें सरकारी शिक्षा व्यवस्था फंसती जा रही है। पंचायती राज संस्थाओं के सक्रिय सहयोग द्वारा इस समस्या का समाधन हो सकता है। शिक्षा में गुणवत्ता को सुधारने का कार्य स्कूल स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं की निगरानी व देखरेख में हो सकता है।

- पंचायती राज संस्थाओं की ग्राम स्तर, पंचायत समिति व जिला परिषद स्तर पर शिक्षा समितियां हैं। इन शिक्षा समितियों की बैठकों में स्थानीय विद्यालयों के अध्यापकों को आमंत्रित किया जा सकता है। इससे शिक्षा पर दोनों पक्ष समस्याओं व समाधान से ज्ञात हो सकते हैं, जिससे शैक्षिक कार्यक्रमों व नीतियों को क्रियान्वित करने में अध्यापक व पंचायती राज की सक्रिय भूमिका रह सके तथा व्यावहारिक कार्यक्रम तथा नीतियां बनाने में मदद मिले। इससे पंचायत विद्यालय शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर ध्यान दे सकती है।
- पंचायती राज संस्थाओं को समग्र ग्रामीण विकास पर ध्यान देना चाहिए, जिसमें सामाजिक, कल्याणकारी व विकास कार्यों की ओर भी ध्यान देना होगा। केवल विद्यालय पर ध्यान देने से शिक्षा का विकास नहीं हो सकता है। उदाहरणस्वरूप हरियाणा के मोहम्मदपुर माजरा गांव में पीने के पानी की समस्या थी। अभिभावक सुबह पानी भरने के कार्य में व्यस्त रहते थे, जिससे बच्चे समय पर विद्यालय नहीं पहुंचते थे, जिससे विद्यालय की पूरी कार्यप्रणाली अस्त–व्यस्त थी। महिलाओं के विरोध स्वरूप पानी की व्यवस्था गांव में की गई, फिर बच्चे विद्यालय समय पर जाने लगे। इसी तरह बिजली की समस्या है, जिससे गांवों में बच्चों की पढ़ाई पर बहुत असर पड़ता है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को सही तरह लागू किया जाना चाहिए। नरेगा जैसे कार्यक्रम भ्रष्टाचार रहित होने चाहिए, जिससे ग्रामीण विकास सुदृढ़ हो। इसलिए पंचायती राज संस्थाओं को गांव के संपूर्ण विकास की ओर ध्यान देना होगा ताकि अभिभावक चिंतामुक्त होकर बच्चों को पढ़ा सकें।
- भारत में सदियों से शिक्षा में समुदाय का सहयोग रहा है। लेकिन आज ग्रामीण क्षेत्रों में भी विद्यालय को सरकारी दफ्तर की तरह समझा जाने लगा है जो कि ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा के लिए हानिकारक है। पंचायती राज संस्थाओं के द्वारा जन

समुदाय में जागृति उत्पन्न करके शैक्षिक विकास कार्यों में पूर्ण जनसहभागिता ली जा सकती है, जिससे गांवों का विकास सुनिश्चित होगा। समुदाय आधारित दृष्टिकोण के जरिये बस्ती स्तर पर आयोजन, स्कूली कार्यकलापों की निगरानी और बड़ी संख्या में कार्यकलापों का निष्पादन पंचायती राज संस्थाओं की ग्राम शिक्षा समितियों अथवा इसके समकक्ष संस्थाओं द्वारा किया जा सकता है।

- शिक्षा के अधिकार को लागू करने के लिए शैक्षिक कार्यक्रम व नीतियां बनाई जा रही हैं। पंचायती राज संस्थाओं को केवल कार्यान्वयन की एजेंसी ही नहीं समझा जाए, बल्कि शैक्षिक नीतियां व कार्यक्रम बनाते समय इनकी भी सहभागिता होनी चाहिए ताकि ज़मीनी वास्तविकताओं की जानकारी का अनुभव भी इसमें शामिल किया जा सके। शाला प्रबंधन समिति द्वारा विकास योजना तैयार करके उसकी संस्तुति भी की जाएगी व प्राप्त अनुदान के उपयोग की निगरानी भी उसके द्वारा की जाएगी, इसलिए इस तरह की प्रक्रिया से पंचायती राज संस्थाएं शैक्षिक कार्यक्रमों को अपनत्व की भावना से लागू करेगी।
- सर्वशिक्षा अभियान कार्यक्रम में समुदाय की सहभागिता भी उसके प्रमुख उद्देश्यों में से एक है। सर्वशिक्षा अभियान के तहत स्कूलों में ग्राम शिक्षा समितियां व अन्य समितियां बनाई गईं, जिसमें पंचायती राज संस्थाओं की भी भागीदारी है। शैक्षिक कार्यक्रमों व नीतियों के कार्यान्वयन के लिए पंचायती राज संस्थाओं को इनके अनुवीक्षण व पर्यवेक्षण का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए, जिससे सही तरह से इन कार्यक्रमों को प्रभावी रूप से लागू किया जा सके।
- पंचायती राज संस्थाओं द्वारा निजी और विशेष श्रेणी वाले विद्यालयों में आर्थिक रूप से निर्बल समुदायों के बच्चों को दाखिला देने की प्रक्रिया शुरू की जा सकती है। पंचायती राज संस्थाओं का अपने क्षेत्र के निजी विद्यालयों पर नियंत्रण व अनुवीक्षण होना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में भारी संख्या में निजी विद्यालयों की संख्या बढ़ रही है। पंचायती राज संस्थाएं अपने क्षेत्र के परिवारों की आर्थिक स्थिति को जानती हैं, इसलिए वह निजी विद्यालयों में दाखिले के लिए अनुशंसा कर सकती हैं।
- पंचायती राज संस्थाओं को अपने क्षेत्र के सभी विद्यालयों व बच्चों पर निगरानी रखनी पड़ेगी क्योंकि यदि कोई भी शिक्षा के अधिकार से संबंधित शिकायत आती है तो वह अच्छी तरह निपटारा करेगी। स्थानीय निकाय ग्रामीण जनों को अच्छी तरह जानता है और अपने विद्यालयों की समस्याओं से भी रू-ब-रू

होगा, इसलिए संबंधित पक्षों को सुनवाई के लिए यथोचित अवसर प्रदान करके यथाशीघ्र मामले का निपटारा किया जा सकता है। इस तरह के मामलों में सक्रिय भूमिका से नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के बच्चे के अधिकार का प्रभावी क्रियान्वयन हो सकता है।

- ग्रामीण क्षेत्रों में यह भी देखा गया है कि गरीब एवं कमजोर वर्ग के परिवारों के बच्चे या तो स्कूल जाते नहीं, अथवा पढ़ाई अधूरी छोड़ देते है। कुछ अभिभावकों की सोच है कि बच्चा घर में रहेगा तो छोटे बच्चों को संभालेगा, जिससे वे अपने दैनिक खेत-खलिहान के कार्य कर पाएंगे। इस मनोवृत्ति ने गांव में शिक्षा के स्तर को ऊपर नहीं उठने दिया है जो कि शोचनीय स्थिति है। इस समस्या के लिए गांवों की आंगनबाड़ी की देख-रेख ग्राम पंचायतों द्वारा अच्छी तरह से की जानी चाहिए। पंचायती राज संस्थाएं बचपनशाला केन्द्र भी चौपाल या सामुदायिक केन्द्रों में खोल सकती है। प्री-प्राइमरी स्कूल या नर्सरी स्कूलों को ग्रामीण क्षेत्र में ज्यादा संख्या में खोला जाना चाहिए, जिसका उत्तरदायित्व पूरी तरह से पंचायती राज संस्थाओं के पास हो। इस तरह की व्यवस्था से किसान-मजदूर अपने छोटे बच्चों को इन केन्द्रों में छोड़कर कृषि व खेत-खलिहान के कार्य कर सकते हैं। आंगनबाड़ी संचालकों का चयन जिला स्तर के अधिकारियों द्वारा न होकर पंचायती राज संस्थाओं द्वारा होना चाहिए।
- ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा का जीवन की प्राथमिकता और अनिवार्य आवश्यकताओं से सीधा संबंध स्थापित किया जाना चाहिए। स्थान और ग्रामीण विद्यार्थियों की परिस्थिति के अनुरूप पाठ्यक्रम रखे जाएं। पंचायती राज संस्थाओं को विद्यालय की पाठ्यचर्या व पाठ्यक्रम निर्माण में शामिल किया जा सकता है जिससे वे अपने गांव की भौगोलिक व सांस्कृतिक विशेषताओं के संदर्भ में जैसे मिट्टी के बर्तन, लकड़ी का कार्य, कृषि, कुटीर उद्योगों से संबंधित विषय, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, पशु-पालन इत्यादि को विद्यालय विषय के रूप में शामिल कर सकते हैं।
- अध्यापक विकास में भी पंचायती राज संस्थाओं का सहयोग जरूरी है। पंचायती राज संस्थाओं के द्वारा अध्यापकों को संरक्षण दिया जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में अध्यापकों के आवास व अन्य सुविधाओं का पंचायती राज संस्थाओं के द्वारा प्रबंध किया जा सकता है। अध्यापक-प्रशिक्षण की भी जिम्मेदारी शिक्षा अधिकार अधिनियम ने स्थानीय संस्थाओं को सौंपी है। अध्यापकों के लिए

प्रभावी प्रशिक्षण की व्यवस्था पंचायत समिति व जिला परिषद अच्छी तरह से कर सकती है।

- विद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रमों, त्यौहार, राष्ट्रीय उत्सव, खेल-कूद, मनोरंजन, मेले, नौटंकी, प्रदर्शनी, मण्डली, लोकगीत, नृत्य इत्यादि में पंचायती राज संस्थाएं बड़े स्तर पर विद्यालय की मदद कर सकती हैं, क्योंकि उन्हें स्थानीय स्रोत व संसाधन, स्थानीय कलाकारों का सहयोग व जनसहभागिता पंचायतों द्वारा प्राप्त हो सकती है। इस तरह के कार्यक्रमों में पंचायतों द्वारा पुरस्कार व पारितोषिक भी देकर विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जा सकता है।
- ज्यादातर शैक्षिक कार्यक्रमों/परियोजनाओं, सुविधाओं की ग्रामीण समुदाय के लोगों को जानकारी नहीं होती है। इस तरह के कार्यक्रमों का प्रचार व जानकारी ग्राम स्तर पर पंचायत द्वारा समुदाय को दी जा सकती है। ग्रामीण जन में आज भविष्य में बच्चों के कैरियर को लेकर चिंता रहती है। इसलिए पंचायती राज संस्थाओं द्वारा ग्रामीण समुदाय में शिक्षा प्राप्ति के बाद प्राप्त अवसरों की ओर ध्यान दिलाना जरूरी है। ग्राम पंचायतों द्वारा कैरियर काउंसलिंग या रोजगार अवसर मेले आदि आयोजित किये जा सकते हैं। इस तरह जानकारी व सूचना के अभाव में ग्रामीण शिक्षा में भागीदारी कम नहीं होनी चाहिए।
- गांवों में पुस्तकालय और वाचनालय पंचायती राज के प्रयासों द्वारा खोला जा सकता है। 73वें संविधान संशोधन के द्वारा भी यह जिम्मेदारी पंचायती राज को दी गई है। कुछ पंचायतों ने इस ओर सराहनीय कार्य किया है, लेकिन ज्यादातर अभी भी गांवों में पुस्तकालयों का अभाव है। पंचायती राज संस्थाओं को इसके लिए प्रयास करना चाहिए ताकि ग्रामीणों में शिक्षा के प्रति जागरुकता बढ़े और विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से वे परिचित हो सकें।
- पंचायती राज संस्थाओं की विद्यालयों के एकेडमिक कैलेण्डर तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। विद्यालय का खुलने और बंद होने का समय, परीक्षाओं का समय, ग्रीष्मकालीन व शीतकालीन छुट्टियों का समय इत्यादि को सुनिश्चित करने में विद्यालय प्रशासन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं की सहभागिता लेनी जरूरी है। गांवों की खेती-बाड़ी, फसल की कटाई-जुताई, पशुपालन, खेत-खलिहान के मजदूर, भौगोलिक दशा में इत्यादि को ध्यान में रखकर पंचायती राज संस्थाओं द्वारा एकेडमिक कैलेण्डर को तैयार करने में मदद मिल सकती है।

वर्तमान में पंचायती राज संस्थाओं के समक्ष समस्याएं व चुनौतियां

पंचायती राज व्यवस्था की अपनी अंतर्निहित समस्याएं हैं जैसे कि इनके पास वित्तीय स्रोतों का अभाव, जटिल प्रशासनिक तंत्र की प्रक्रिया, महिला प्रतिनिधियों की निष्क्रिय सहभागिता, दलित नेतृत्व का प्रभावशाली नहीं होना, अफसरशाही का सख्त रवैया, युवा नेतृत्व की कमी, राजनीतिक दखलंदाजी इत्यादि। इन समस्याओं से किसी भी विकास प्रक्रिया के कार्यक्रम में बाधा बनती जा रही है।

पंचायती राज संस्थाओं को अपने शैक्षिक कार्यों व उत्तरदायित्व संबंधी अधिकारों की स्पष्ट जानकारी नहीं है। ग्राम पंचायत स्तर पर स्कूलों में निरीक्षण व देख–रेख का कार्य सही ढंग से नहीं किया जा रहा है। ग्राम पंचायत केवल औपचारिकतापूर्वक निरीक्षण करती है। आज भी ग्रामीण विद्यालयों में पीने के पानी की समस्या, चारदीवारी, खेल का मैदान, विद्यालय जाने के रास्ते ठीक नहीं हैं जो कि शोचनीय स्थिति है। पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तर पर शैक्षिक अधिकार स्पष्ट तौर पर नहीं बताये गये हैं, जिससे शैक्षिक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन व उत्तरदायित्व में अस्पष्टता रहती है। पंचायती राज संस्थाओं को भी राज्यों के शिक्षा विभागों द्वारा शिक्षा संबंधी प्रशिक्षण नहीं दिया जा रहा है।

पंचायती राज संस्थाओं व विद्यालयों के बीच आपसी सहयोग ज्यादा अच्छा नहीं है। ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों व जिला परिषदों की बैठकों में शिक्षा संबंधी चर्चा केवल निर्माण कार्यों और खर्चे के हिसाब तक ही सीमित रहती हैं। विद्यालयों द्वारा अपनी समस्याओं को ग्राम पंचायत के समक्ष कम ही रखा जाता है। ग्राम पंचायतों की बैठकों में अध्यापकों को नहीं बुलाया जाता है। पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों के पास समय की कमी रहती है। ग्राम पंचायत के सदस्य खेती–बाड़ी के कार्यों में व्यस्त रहते हैं। महिलाएं घर के कार्यों में ज्यादा व्यस्त रहती हैं। दलित वर्ग के प्रतिनिधि भी अपनी रोजी–रोटी के कार्यों में व्यस्त रहते हैं। इन कारणों से सदस्यों की सक्रिय भूमिका नहीं हो पा रही है।

शैक्षिक नौकरशाही के दृष्टिकोण से भी शैक्षिक विकेन्द्रीकरण नहीं हो पा रहा है। शैक्षिक योजनाएं सरकारी तंत्र से मुक्त नहीं हैं और दफ्तरी दृष्टिकोण से पंचायतों की रुचि व सहभागिता कम हुई है। शैक्षिक नौकरशाही अपनी शक्तियों का प्रत्यायोजन भी नहीं करना चाहती है और पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों पर विश्वास भी नहीं करती

हैं। शैक्षिक कार्यक्रमों व योजनाओं को बनाने में पंचायती राज संस्थाओं की कोई भूमिका नहीं है। इन्हें केवल कार्यान्वयन की एजेंसी माना जाता है। इसलिए ग्रामीण जन पंचायती राज संस्थाओं को शासकीय एजेंसी जैसा मानते हैं।

ग्रामीण जनों की सरकार पर निर्भरता ज्यादा बढ़ गई है और सामुदायिक भावना की कमी हो रही है। अब विद्यालयों को भी सरकारी दफ्तर की तरह समझा जाने लगा है। आज लोगों की सोच यह हो गयी है कि सभी कार्य सरकार करेगी, क्योंकि यह उसकी बाध्यता तथा कर्त्तव्य है। पंचायती राज संस्थाओं में गुटबाजी स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है, जिससे किसी भी कार्य को ठीक तरह से नहीं किया जा रहा है। पंचायती राज संस्थाओं को राजनीति का अखाड़ा भी बना लिया गया है। पंचायत समिति, जिला परिषद के सदस्य तो मिनी विधायक के समान हैं जो कि क्षेत्रीय राजनीति में अच्छी खासी पैठ रखते हैं। इस तरह ये संस्थाएं उद्देश्यों से भटक गई हैं जिससे विद्यालयों का शैक्षिक वातावरण भी प्रभावित हो रहा है।

ग्राम पंचायतों में ग्राम सभा सक्रिय नहीं है। ग्राम-सभा ग्राम-पंचायत का आधार है, लेकिन ग्राम सभा केवल अपने कार्यों की कागजी कार्रवाई ही करती है। इस तरह गांवों में संवाद व परिचर्चा का वातावरण ग्राम सभा के निष्क्रिय रूप से नहीं बन पा रहा है जिससे शिक्षा व विकास संबंधी कार्य भी रुक जाते हैं।

ग्रामीण परिवेश में सामाजिक आर्थिक शक्ति संरचना स्थानीय स्तर पर प्रभावशाली है। आर्थिक असमानता ग्रामीण क्षेत्रों में वृहत स्तर पर है। गांवों में जमीन का असमान वितरण पूरे भारत में एक गंभीर समस्या के रूप में आज भी विद्यमान है। इसलिए स्थानीय अभिजन अपने प्रभाव के कारण विभिन्न निर्णयों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं और सभी लोगों की विकास प्रक्रिया में भागीदारी संभव नहीं हो पाती है। शिक्षा व्यवस्था में भी यह संदर्भ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

गांवों में प्राइवेट स्कूलों की भीड़ बढ़ती जा रही है। सरकारी स्कूलों से प्राइवेट स्कूलों की ओर विद्यार्थियों का पलायन हो रहा है। ग्रामीण सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या दिन-प्रतिदिन कम हो रही है। आम किसान व मजदूर भी प्राइवेट स्कूलों में अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं। सरकारी स्कूलों से ग्रामीणों का विश्वास उठता जा रहा है। शिक्षा में देखरेख व निरीक्षण की भूमिका पर यह समस्या पंचायतों के समक्ष चुनौती व सवाल खड़ा करती है।

निष्कर्ष

आज यह महत्त्वपूर्ण एवं जरूरी प्रतीत होता है कि अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा अधिनियम को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए त्रि-स्तरीय पंचायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों तथा शासकीय अधिकारियों को प्रभावी एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। शिक्षा के अधिकार के संदर्भ में पंचायती राज संस्थाओं को सही ज्ञान होना जरूरी है।

ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा को सामूहिक उत्तरदायित्व के रूप में लिया जाना चाहिए। इसमें समुदाय/पंचायत, शिक्षक तथा अभिभावकों का समान उत्तरदायित्व है। शिक्षा के नियोजन और प्रबंध का विकेन्द्रीकरण भी आवश्यक है। पाठ्यक्रम ग्रामीण स्थानीय जरूरतों के हिसाब से प्रासंगिक होना चाहिए। ग्रामीण विकास को हमें समग्र विकास की संकल्पना समझना होगा। ग्रामीण लोगों के मन में यह भावना भी जगानी होगी कि शिक्षा का संबंध केवल नौकरी से नहीं है, बल्कि यह अंतर्निहित गुणों का विकास भी करती है।

इस तरह ग्रामीण स्थानीय प्राधिकार के द्वारा ग्रामीण शिक्षा में सुधार लाया जा सकता है लेकिन ध्यान रखना होगा कि विद्यालयों को राजनीतिक तथा पारिवारिक समस्याओं का अखाड़ा न बनने दें। इसके लिए आवश्यक है कि जन-प्रतिनिधि दृढ़ इच्छा शक्ति और स्पष्ट संकल्प के साथ विद्यालयों में शैक्षिक वातावरण तैयार करने में अपना योगदान दें।

संदर्भ

एम.एच.आर.डी. (1964-66); राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, नई दिल्ली: भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय

एम.एच.आर.डी. (1986); नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, नई दिल्ली: भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय

एम.एच.आर.डी. (1990); राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट (राममूर्ति समिति) नई दिल्ली: भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय

एम.एच.आर.डी. (1992); राष्ट्रीय शिक्षा नीति (संशोधित), नई दिल्ली: भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय

एम.एच.आर.डी. (1993); शिक्षा बिना बोझ के, नई दिल्ली: भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय

लॉ, जस्टिस एण्ड कम्पनी अफेयर्स मंत्रालय (1993); द कांस्टीट्यूशन (सेवेंटी थर्ड एमेंडमेंट) एक्ट 1992, दिल्ली : भारत सरकार, लॉ जस्टिस एण्ड कंपनी अफेयर्स मंत्रालय

ब्रे,माक्र (1999); ई.एफ.ए., द थिमेटिक स्टडी, कम्युनिटी पार्टनरशिप इन एजुकेशन, डायमेंशन्स

वेरिएशन्स एंड इम्पलीकेशन्स, कम्पेरेटिव एजुकेशन रिसर्च, द यूनिवर्सिटी, हांगकांग।

शेठ, शमता (2000); पंचायत राज, नई दिल्ली, हिमांशु पब्लिकेशन्स

दि डकॉर फ्रेमवक्र फॉर एक्शन (2000), डकार, यूनेस्को, फ्रांस।

सेन, अमर्त्य, द्रेज, ज्यां (2000); भारत विकास की दशाएं, राजपाल एंड संस, दिल्ली।

भास्कर राव, दिग्मूर्ति (2001); डिसेंट्रलाइजेशन मैनेजमेंट ऑफ एजुकेशन, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

मैथ्यू जॉर्ज (2003); भारत में पंचायती राज परिप्रेक्ष्य और अनुभव, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन

अश्वनी (2005); पंचायती राज और शिक्षा का प्रबंधन, परिप्रेक्ष्य पत्रिका, वर्ष 12, अंक 2, नई दिल्ली : नीपा

एन.सी.ई.आर.टी. (2006); राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, नई दिल्ली, एनसीईआरटी

संदर्शिका (2007); ग्राम शिक्षा समिति एवं ग्राम निर्माण समिति, चंडीगढ़: हरियाणा, प्राथमिक शिक्षा परियोजना परिषद

मिनिस्टरी ऑफ पंचायती राज (2007-2008); एनुअल रिपोर्ट, नई दिल्ली: भारत सरकार, मिनिस्टरी ऑफ पंचायती राज

पंचायती राज विभाग (2008); फिफ्टीन एनीवर्सरी चार्टर ऑन पंचायत राज इनक्लुसिव ग्रोथ थ्रू इन्क्लुसिव गर्वनेंस, नई दिल्ली: भारत सरकार, पंचायती राज विभाग

अश्वनी (2009); ग्रामीण शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता, परिप्रेक्ष्य पत्रिका, वर्ष 16, अंक 1, नई दिल्ली: न्यूपा

भारत का राजपत्र (2009); द राइट ऑफ चिल्ड्रन टू फ्री एण्ड कम्पलसरी एजुकेशन एक्ट, 2009, नई दिल्ली: भारत सरकार, मिनिस्टरी ऑफ लॉ एण्ड जस्टिस, लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट

एजुकेशन एण्ड नेशनल डेवलपमेंट, *रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमीशन* 1964-66, नई दिल्ली: एनसीईआरटी, पृष्ठ 415

कुमार, कृष्ण (2004); *बच्चे की भाषा और अध्यापक,* (पुनर्मुद्रित), नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट, पृष्ठ 13

गुप्त, जितेन्द्र (2010, मार्च). *साम्यवाद, लोकतंत्र और हाइरॉक्रि, समयांतर,* नई दिल्ली : समयांतर, पृष्ठ 13

द राइट ऑफ चिल्ड्रेन टू फ्री एंड कंपल्सरी एजुकेशन बिल (2008), नई दिल्ली: एम.एच. आर.डी., पृष्ठ 6

राय, अखिल कुमार (2009, अप्रैल-जून). *शिक्षा व्यवस्था में भय का चेहरा*, परमिता, 5, वाराणसी, पृष्ठ 31

स्कूल इनडिसप्लीन- द केस स्टडी ऑफ एन इंस्टीट्यूशन, इन एजुकेशनल स्टडीज एण्ड इन्वेस्टिगेषन-1962, नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी. 141-47

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 17, अंक 3, दिसंबर 2010

महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण

महेश कुमार मुछाल*

शिक्षा किसी भी राष्ट्र को उन्नति के पथ पर लाने के साथ मनुष्य जीवन के महत्त्वपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त करने में उपयोगी साधन है, जिसके माध्यम से व्यक्ति की बुद्धि व व्यक्तित्त्व में निखार आता है। वह अपने व्यक्तित्त्व में समाहित गुणों के माध्यम से व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र को उन्नतिशील बनाता है। साथ ही शिक्षा व्यक्ति का आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक कार्यों को सम्पन्न करने के योग्य बनाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जिस शिक्षा को ग्रहण कर मनुष्य राष्ट्र और समाज का उत्थान करे तथा इसके माध्यम से जीविकोपार्जन करे, इसी में शिक्षा की सार्थकता है।

शिक्षा के महत्त्व को स्वीकारते हुए कहा जाता है कि यदि एक पुरुष को शिक्षित किया जाए तो एक व्यक्ति शिक्षित होता है, लेकिन अगर एक महिला को शिक्षित कर दिया जाए तो पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है। अर्थात् एक महिला का शिक्षित होना उसके पूरे परिवार की शिक्षा और कल्याण से जुड़ा है। परिवार में महिला शिक्षा से बच्चे विशेष रूप से प्रभावित होते हैं, क्योंकि बच्चे राष्ट्र का भविष्य होते हैं। इसीलिए भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ महिलाओं में व्याप्त अशिक्षा अधिकारों के प्रति उदासीनता, आर्थिक निर्भरता, तकनीकी एवं पुरुषों का महिलाओं पर प्रभुत्व आदि समस्याओं को दूर करने के लिए शिक्षा का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है।

महिला शिक्षा की स्थिति :

वर्तमान समय में हमारे देश में महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। विभिन्न आयोग एवं समिति के द्वारा महिला शिक्षा पर बल दिया गया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् वर्ष 1951 में महिला साक्षरता दर 8.86 प्रतिशत थी जो सन् 2001 में 54.16 प्रतिशत हो गई है। आज भी देश में 30 करोड़ लोग निरक्षर हैं, उनमें अधिकांश महिलाएं

*एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यापक प्रशिक्षण विभाग, दिगम्बर जैन महाविद्यालय, बड़ौत।
e-mail: mkmuchhal@rediffmail.com

हैं। भारत सरकार द्वारा साक्षरता दर बढ़ाने के लिए किए गए प्रयास महिलाओं की साक्षरता दर 1981 में 29.75 प्रतिशत थी, जो 1991 में 39.29 प्रतिशत तथा 2001 में 54.16 प्रतिशत हो गई। फिर भी अभी तक 45.84 प्रतिशत महिलाएं साक्षर नहीं हैं। विद्यालयीय शिक्षा छोड़ने वाले विद्यार्थियों में बालिकाओं की संख्या अधिक है। आज प्राइमरी स्तर पर 70 प्रतिशत बालिकाएं शिक्षा प्राप्त कर रही हैं, माध्यमिक स्तर पर यह अनुपात और कम हो जाता है। 100 लड़कों में 45 लड़कियां ही माध्यमिक स्तर पर शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। महाविद्यालय स्तर पर 100 लड़कों की तुलना में 50 लड़कियां ही शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। भारत में स्कूल जाने वाली आयु की 3 करोड़ बालिकाएं पढ़ने नहीं जा रही हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश व राजस्थान ऐसे राज्य हैं जहां नामांकन दर कम है। वहीं दूसरी तरफ विद्यालय छोड़ने की दर भी अधिक है।

2001 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 49 करोड़ 57 लाख 50 हजार है। यह देश की आबादी का 48.3 प्रतिशत है। किन्तु दु:खद बात यह है कि आर्थिक विकास के बावजूद भी महिलाओं की स्थिति पुरुषों की तुलना में कमजोर बनी हुई है तथा शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य एवं आर्थिक सहभागिता आदि क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति निम्नतर बनी हुई है।

महिला अधिकार व विकास की बात तब व्यर्थ होती है, जब विश्व की आधी जनसंख्या को मूल अधिकार प्राप्त नहीं है। भारत में विश्व की जनसंख्या का 1/7 वाँ हिस्सा है। लगभग 800 करोड़ में से 50 प्रतिशत महिलाएँ हैं और आधी संख्या 20 वर्ष से कम है। भारत में प्रतिवर्ष 12 करोड़ कन्याओं का जन्म होता है, जिसमें डेढ़ करोड़ अपना प्रथम जन्म दिवस नहीं देख पाती हैं। केवल 9 करोड़ कन्याएं ही अपना 15वां जन्म दिवस मना पाती हैं। कन्याएँ अनचाही होने के साथ-साथ परिवार पर बोझ मानी जाती है, इनका शोषण जन्म के पूर्व से प्रारम्भ होकर मृत्युपर्यन्त चलता है।

स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भारतीय महिलाओं की स्थिति आज भी चिन्तनीय है। भारतीय समाज में लड़की के साथ जन्म से भेदभाव बरता जाता है। इसलिए 5 से 6 वर्ष के बीच मरने वाले बच्चों में अधिकांश लड़कियां होती हैं। 1998 में जन्म से 4 वर्ष तक की आयु के बीच मरने वाले बच्चों में लड़कों की मृत्यु दर 21.1 थी, जबकि लड़कियों की 24.4 थी। कारण, लड़कियों से भेदभाव तथा कन्या भ्रूण हत्या इसी का

परिणाम है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार महिलाएँ किशोरावस्था में विवाहित हो जाने के कारण 1.9 प्रतिशत खून की जबरदस्त कमी एवं 45.9 प्रतिशत खून की सामान्य कमी की शिकार होती हैं। पंजाब राज्य में कुपोषण पर सर्वे में पाया गया कि एक युवा व प्रौढ़ महिला पुरुष के मुकाबले में प्रतिदिन एक हजार कैलोरी कम प्राप्त करती है। यह अन्तर दक्षिण राज्यों की अपेक्षा उत्तरी राज्यों में अधिक है।

भारतीय गांवों में माताओं की मृत्यु दर अधिक है। गर्भावस्था के दौरान नियमित जांच न कराकर उसे स्वाभाविक प्रक्रिया माना जाता है, इसलिए डाक्टर के पास जाने की आवश्यकता नहीं समझी जाती है। गर्भवती महिलाओं में 54 प्रतिशत एनीमिक हैं। राष्ट्रीय सर्वे के आंकड़ों के अनुसार केवल 40.50 प्रतिशत महिलाओं को गर्भावस्था के दौरान चिकित्सीय मदद मिल पाती है। अनुमान यह है कि 15 से 29 वर्ष की महिलाओं की एक चौथाई मौतें गर्भावस्था सम्बन्धी कारण, रक्तअल्पता, सैप्टिक, लेबर एवं टेक्सिमिया आदि के कारण होती हैं।

महिला शिक्षा व सशक्तिकरण की आवश्यकता :

शिक्षा सामाजिक सशक्तिकरण का प्रभावशाली माध्यम है। इसलिए माना जाता है कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में ज्ञान, कौशल, दक्षता एवं क्षमताओं का विकास होता है, जो महिला सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है। इससे महिलाओं के शोषण को रोकने में मदद मिलेगी। स्वनिर्णय लेने की क्षमता, सशक्तिकरण का एक बड़ा मानक है। शिक्षा का निर्णय लेने की क्षमता से धनात्मक एवं सार्थक सम्बन्ध है, क्योंकि शिक्षा के द्वारा अन्य पक्षों जैसे– समाज, धर्म सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व स्वास्थ्य के बारे में जानकारियां रखना आवश्यक है। इसलिए भारत में महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण की जागरुकता एवं विकास के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। ताकि हमारा आने वाला समय तभी सुहावना होगा, जब महिलाओं को शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य जागरुकता की दृष्टि से सशक्त करने की सार्थक पहल होगी और उनको पुरुषों के समान सम्मान प्राप्त होगा तथा वे अपनी अर्न्तप्रहित शक्तियों का सदुपयोग कर राष्ट्र के विकास में भागीदार बन सकेंगी।

हमारे संविधान के अनुच्छेद 15(1)ए, 16(1) एव 16(2) में उल्लेख है कि किसी भी नागरिक से लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। संविधान की धारा

15 के अनुसार राज्य किसी नागरिक के प्रति केवल जाति, धर्म, लिंग, जन्म स्थान आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। दसवीं योजना में लैंगिक भेदभाव को दूर करने की प्रतिबद्धता स्पष्ट रूप से उजागर होती है। योजना के दस्तावेज में उल्लिखित है, ''दसवीं योजना के अन्तर्गत महिला घटक योजना एवं जेंडर बजटिंग की इन प्रभावी संकल्पनाओं को एक साथ जोड़ने के लिए तत्काल कार्यवाही प्रारम्भ की जाएगी, ताकि वे एक-दूसरे के प्रति पूरक भूमिका अदा कर सकें तथा इस प्रकार निवारण एवं कार्योत्तर कार्यवाही को सुनिश्चित किया जा सके और इसके फलस्वरूप महिलाओं को महिला सम्बन्धी सभी सामान्य विकासात्मक क्षेत्रों में अपना उचित हिस्सा प्राप्त हो सके।''

महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य सामाजिक सुविधाओं की उपलब्धता, राजनैतिक और आर्थिक नीति निर्धारण में भागीदारी, समान कार्य के लिए समान वेतन, कानून के तहत सुरक्षा व प्रजनन अधिकारों आदि को सम्मिलित किया जाना है।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ किसी कार्य करने या रोकने की क्षमता से है, जिसमें महिलाओं को जागरुक करके उन्हें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी साधनों को उपलब्ध कराया जाये, ताकि उनके लिए सामाजिक न्याय और महिला-पुरुष समानता का लक्ष्य हासिल हो सके। महिला सशक्तिकरण का आशय महिला को अपने सम्मान, स्व अधिकारों एवं योग्यता में संवर्धन की ओर अग्रसर करना है जिससे महिलाओं को घर एवं बाहर दोनों में सुरक्षित करना है। सशक्तिकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य है महिलाओं में जागरुकता लाना एवं निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना ताकि वे स्वयं को आत्मनिर्भर समझ सकें। सामाजिक, आर्थिक संसाधनों पर पूरा नियन्त्रण प्राप्त करने की क्षमता को विकसित करना, सशक्तिकरण केवल शक्ति का अधिग्रहण नहीं है बल्कि शक्ति का उपयोग करना है। महिलाओं को हाशिये से हटाकर समाज की मुख्य धारा में लाना और निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना ही सशक्तिकरण है। समाज में महिला भयमुक्त होकर कहीं भी आ-जा सके, बिना सम्मान खोये अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सके एवं उनकी इच्छा-अनिच्छा की समाज में कदर की जाये, उसे अपना वाजिब हक मिले, देश की प्रगति में, इसका पर्याप्त योगदान हो तो हम कह सकते हैं कि महिला सशक्त हो गई। जिस समाज व राष्ट्र की महिलाएं सशक्त हैं, आत्मनिर्भर हैं, वह राष्ट्र अवश्य ही विकास के पथ पर अग्रसर होगा। महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति का उद्देश्य महिलाओं की प्रगति, विकास एवं आत्मशक्ति को सुनिश्चित करना है।

सशक्तिकरण का प्रमुख आधार शिक्षा है। शिक्षा का अर्थ मात्र साक्षरता न होकर चिंतन शक्ति एवं व्यक्तित्त्व का विकास है। शिक्षा जीवन के अनुभवों के सतत पुनर्निर्माण के माध्यम से जीवन की प्रक्रिया है, यह मनुष्य में उन समस्त क्षमताओं का विकास करती है, जिसके द्वारा वह स्वयं अपने परिवेश को नियंत्रित करता है और अपनी उपलब्धियों की संभावनाओं को पूर्ण करता है। शिक्षा के माध्यम से ही महिला सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों में न केवल स्वयं को सबल बना सकती है अपितु अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर समाज में अपनी स्वतन्त्र पहचान भी बना सकती है। शिक्षा के अभाव में महिला सशक्तिकरण की योजना कल्पनीय ही होगी।

महात्मा गाँधी और महिला शिक्षा :

गाँधी जी शिक्षा के माध्यम से ही महिलाओं की मुक्ति में विश्वास रखते थे और उन्होंने भारतीय समाज के कायाकल्प की दिशा में चलाई गई राजनीतिक, सामाजिक एवं विकास सम्बन्धी गतिविधियों में महिलाओं के प्रति भेदभाव नहीं रखा, सामाजिक निरंकुशता और पुरुष प्रधानता के प्रति भेदभाव नहीं रखा, सामाजिक निरंकुशता और पुरुष प्रधानता के कारण महिलाओं की दुर्दशा हुई है।

गाँधीजी अपनी माता का बहुत आदर करते थे जो उन्हें सत्य बोलने की शिक्षा एवं झूठ का सहारा न लेने की शिक्षा देती थीं। गाँधीजी नारीत्व एवं मातृत्व का सम्मान करते थे। उनके सम्भाषणों में सीता, द्रौपदी, दमयंती, गार्गी, मैत्रेयी व अन्य पौराणिक महिलाओं के चरित्रों का गुणगान मिलता है।

गाँधीजी ने महिलाओं की शिक्षा को पर्याप्त महत्त्व दिया। वे जानते थे, उनके शिक्षा के बारे में विचार उनके अनेक समकालीनों से भिन्न थे। उन्होंने कहा था कि ''महिलाओं की शिक्षा मात्र ही दोषी नहीं है, हमारी समूची शिक्षा प्रणाली विगलित है।'' वे शहरों और कस्बों में रहने वालों की आलोचना करते थे, जो जनसंख्या का कुल 10.15 प्रतिशत है और प्रत्येक चीज में लिंग सम्बन्धी भेदभाव को बढ़ावा देते हैं। 'यंग इंडिया में 23 मई 1929 को लिखे गाँधीजी के एक लेख से पता चलता है कि उन्हें निरक्षरता, स्कूल सुविधाओं का अभाव होने, ऐसी और अन्य सामाजिक, आर्थिक अक्षमताओं की जानकारियाँ थीं जिनका सामना ग्रामीण महिलाओं को करना पड़ता है। उन्होंने लिखा था–

'जरूरी यह है कि शिक्षा प्रणाली को दुरुस्त किया जाये और उसे व्यापक जन समुदाय को ध्यान में रखकर तय किया जाये। बच्चों के साथ प्रौढ़ शिक्षा पर जिस शिक्षा प्रणाली में बल नहीं दिया जाएगा, वह उपयुक्त भी नहीं हो सकती....। भारत में जो गिनी-चुनी शिक्षित महिलाएँ हैं, उन्हें पश्चिमी ऊँचाइयों से नीचे उतरकर देश के मैदानों में आना होगा। उनकी उपेक्षा के लिए निश्चित ही पुरुष जिम्मेदार हैं बल्कि उन्होंने महिलाओं का अनुचित इस्तेमाल किया है और उन्हें काफी प्रायश्चित करना होगा। किन्तु जो महिलाएँ अंधविश्वास से ऊपर उठ चुकी हैं और जिन्हें उचित-अनुचित का ज्ञान हो गया है, उन्हें सुधार के लिए रचनात्मक कार्य करने होंगे। साथ ही कहा कि शहरी महिलाओं की प्रगति दिखाकर समूचे भारत की महिलाओं की तस्वीर पेश नहीं की जा सकती। अभिजात्य महिलाओं की मुक्ति मात्र से महिला मुक्ति का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता, इसके लिए ग्रामीण महिलाओं के जीवन में सुधार लाना होगा।

गाँधीजी और महिला सशक्तिकरण :

महात्मा गाँधी के विचार महिला शिक्षा के साथ-साथ महिला सशक्तिकरण पर भी प्रासांगिक हैं। गाँधीजी ने कहा कि ''महिलाएँ जिनको अपना ब्रृंगार समझती हैं, उन बेड़ियों से मुक्ति दिलाने के बारे में मेरे विचार बड़े क्रांतिकारी हैं। मुझे यकीन है कि अगर ईश्वर ने चाहा तो एक दिन जब मेरी खोज पूरी हो जायेगी मैं अपने निष्कर्षों को जनता के सामने रख पाऊँगा। अपने अनुभव से मुझे इस बात का यकीन हो गया है कि महिलाओं की असली तरक्की उनके अपने प्रयासों से ही हो सकती है।'' महिलाओं को पुरुषों के बराबरी के मुद्दे पर गाँधीजी एकदम स्पष्ट हैं। उन्होंने कहा कि ''हमारे लिए विचार करने की बात यह है कि पुरुषों के मुकाबले हमारी महिलाओं की स्थिति हीन क्यों हो गयी है और पुरुष महिलाओं के प्रति हमेशा निष्पक्ष नहीं रहे हैं तथा खुद ही निर्धारित जिम्मेदारियों को पूरा करने में भेदभाव करते रहे हैं।''

गाँधीजी के विचार उन्नीसवीं शताब्दी में महिला अधिकार एवं उनकी समस्याओं के प्रति एक कदम आगे बढ़कर है जो परिवार के परम्परागत ढांचे में उनके दर्जे तक सीमित था। गाँधीजी भली-भाँति समझते थे कि आर्थिक और राजनीतिक शक्ति की कोई भी बात करने से पहले हमारी महिलाओं को साहस और आत्मविश्वास की आवश्यकता है। सदियों की दासता से पैदा हुई दास मनोवृत्ति की बेड़ियों को तोड़ने के

लिए आत्मसम्मान की भावना को वे बहुत ही आवश्यक मानते थे। उन्होंने देखा कि अगर महिलाओं की दशा में बदलाव लाना है तो शिक्षा, सामाजिक सुधार और अर्थनीति व राजनीति को देश की प्रतिभा के अनुरूप बनाना होगा।

गाँधीजी चाहते थे कि महिलाएँ अन्याय का मुकाबला अन्याय और हिंसा से करने की बजाय अपनी आंतरिक शक्ति और क्षमता का विकास करें। उन्होंने भारतीय महिलाओं को भय से मुक्त किया।

मुम्बई में 1919 में गाँधी जी ने विकास में महिलाओं की सहभागिता पर महिला सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहा कि, ''आप लोगों में जो लोग शिक्षित हैं, उन्होंने अखबारों में स्वदेशी की प्रतिज्ञा के बारे में पढ़ा होगा। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद मैं जो बात बार-बार कह रहा हूँ वइ इस प्रकार है : जब तक भारत में महिलाएं दुनिया के मामलों में पुरुषों के साथ विश्व मामलों और धार्मिक व राजनीतिक मामलों में बराबरी की हिस्सेदारी निभाना शुरू नहीं करतीं, भारत का सितारा बुलंद नहीं होगा। एक उदाहरण से यह बात साफ हो जायेगी। शरीर के एक हिस्से के लकवाग्रस्त हो जाने से ऐसा व्यक्ति कोई काम नहीं कर सकता। इसी तरह अगर महिलाएं पुरुषों के कार्य में भागीदार नहीं हैं तो देश का दुर्गति की हालत में रहना एक तरह से तय है।

गाँधी जी उत्कृष्ट कोटि के महिलावादी थे, इसलिए महिलाओं के आंतरिक गुण, धैर्य तथा आस्था का सत्य प्राप्त करने के लिए इन गुणों को अपनाया, और यही सत्याग्रह है। गाँधी जी महिलाओं को समाज का एक ऐसा अंग मानते थे जो पुरुषों की तरह अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करने में सक्षम था। गाँधी जी के लिए महिलाएँ बेजुबान और गुमनाम महिला शक्ति मात्र नहीं थी, जिनमें शक्ति का संचार किया जाना जरूरी था, बल्कि उनके लिए महिलाएँ उच्चतर मानवीय मूल्यों जैसे करुणा, ममता और बलिदान का प्रतीक थीं। वे उन्हें महज घर की शोभा बढ़ाने वाली वस्तु या गृहस्थी की चक्की में पिसती रहने वाली सदस्य नहीं मानते थे। गाँधी जी का कहना था, ''मैं महिलाओं की घरेलू दासता को हमारे वहशीपन की निशानी मानता हूँ। मेरी राय में रसोईघर की दासता केवल बर्बरता का ही अवशिष्ट रूप है। अब समय आ गया है कि महिलाओं को इस दासता से मुक्त कराया जाए। महिलाओं का सारा समय सिर्फ घरेलू काम में नहीं बीतना चाहिए।

महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण के विकास में गतिहीनता के कारण :

- परम्परागत व रूढ़िवादी मानसिकता वाले कुछ माता-पिता सहशिक्षा अर्थात् लड़कों के साथ लड़कियों को शिक्षा दिलाने के पक्ष में नहीं है।
- लड़कियों को पराया धन समझने की सोच, महिला शिक्षा पर निवेश को आर्थिक बोझ मानती है।
- लड़कियों पर घरेलू दायित्व, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा एवं अन्य सामाजिक कुरीतियां तथा लड़कियों को घर से दूर जाने पर सुरक्षा आदि कारणों ने उन्हें पढ़ाने के प्रति अभिभावकों को हतोत्साहित कर सर्वांगीण विकास का मौका नहीं दिया।
- भारतीय समाज में पुरुषों के समान अधिकार नहीं दिए जाते हैं, साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति और भी दयनीय है।
- देश में पिछड़े, अनुसूचित जाति एवं अल्पसंख्यक वर्ग की मानसिकता आज भी परम्परावादी है। इसलिए इन वर्गों में महिला साक्षरता की राह में बड़ा अवरोध है।
- न्यूनतम शैक्षिक स्तर के कारण महिलाएं आज भी स्वास्थ्य के प्रति जागरूक नहीं है, इसी कारण उनके कल्याण से सम्बन्धित उपलब्ध सुविधाओं का उन्हें ज्ञान नहीं है। आंकड़ों से स्पष्ट है कि गर्भवती महिलाओं में 54 प्रतिशत एनीमिक हैं। एक लाख जीवित जन्म दर पर 301 मातृ मृत्यु दर। केवल 43 प्रतिशत जन्म प्रशिक्षित स्टाफ की देखरेख में होते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार शिक्षा को महिला समानता और सशक्तिकरण के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए और हर स्तर पर स्त्री-पुरुष भेदभाव को दूर करने के प्रयास किए जाने चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की कार्य योजना का 1992 में महिला समानता और सशक्तिकरण को महत्त्वपूर्ण सुझाव निम्न हैं–

- महिलाओं का आत्मसम्मान और आत्मविश्वास बढ़ाना।
- समाज और राजनीति तथा अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान को मान्यता प्रदान करके महिलाओं की सकारात्मक छवि बनाना।

- ♦ समालोचनात्मक ढंग से सोचने की क्षमता विकसित करना।
- ♦ सामूहिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्णय लेने की क्षमता विकसित करना और कार्यवाही करना।
- ♦ शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य (विशेषकर प्रजनन स्वास्थ्य) जैसे क्षेत्रों में महिलाओं को जानकारी देकर विकल्प चुनने योग्य बनाना।
- ♦ विकासात्मक प्रक्रियाओं में समान सहभागिता सुनिश्चित करना।
- ♦ आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए सूचना, ज्ञान और कौशल प्रदान करना।
- ♦ समाज में महिलाओं के अधिकारों से सम्बन्धित कानूनी जानकारी और सूचना तक उनकी पहुँच बढ़ाना, ताकि सभी क्षेत्रों में समान आधार पर उनकी सहभागिता बढ़ायी जा सके।

(राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 : कार्य योजना, 1992, पृ0 2)

वर्ष 2001 में राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं –

1. सकारात्मक आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों के द्वारा उनके लिए ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना, ताकि उन्हें अपनी काबिलियत का अहसास हो।
2. महिलाओं को हर क्षेत्रों में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हो, जैसे– सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक आदि।
3. महिलाओं को सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक निर्णय लेने की बराबरी का अवसर मिले।
4. महिलाओं से भेदभाव को रोकने वाले सारे कानूनी नियमों को और कड़ा किया जाए।
5. महिलाओं को हर स्तर पर स्वास्थ्य एवं गुणवत्ता की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले। कैरियर, व्यावसायिक गाइडेंस तथा रोजगार, समान सुविधाएं स्वास्थ्य एवं सुरक्षा तथा सामाजिक सम्मान मिले।
6. महिलाओं तथा लड़कियों के खिलाफ हिंसा तथा भेदभाव को खत्म करना।

7. महिलाओं के संगठन तथा अन्य सामाजिक संस्थानों के साथ सहयोगिता को बढ़ाना।
8. महिला एवं पुरुषों के सामूहिक प्रयास द्वारा समाज तथा समुदाय के दृष्टिकोण तथा सोच को बदला जाना।

महिला विकास हेतु राज्य सरकारों द्वारा संचालित योजनाएं :

- पंचधारा योजना : 1 नवम्बर 1991 से मध्य प्रदेश सरकार द्वारा ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्र की महिलाओं के कल्याण व विकास हेतु संचालित योजना।
- स्वास्थ्य सखी योजना : उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा संचालित कक्षा 8 तक पढ़ी 18 से 35 आयु वर्ग की अनुसूचित जाति की महिलाओं को 'मिड वाइफ' के रूप में प्रशिक्षण तथा चयनित महिलाओं को 500 रुपए भत्ता देय।
- किशोरी बालिका योजना : यह योजना बिहार सरकार द्वारा 14 से 18 वर्ष की किशोरियों के पोषण, स्वास्थ्य स्तर में सुधार तथा अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से अक्षर व अंक ज्ञान प्रदान करना।
- अपनी बेटी अपना धन : यह योजना 2 अक्टूबर 1994 को हरियाणा सरकार द्वारा संचालित की गयी। इस योजना में सरकार द्वारा 500 रुपए की अनुसूचित जाति एवं जनजाति परिवार की नवजात शिशु के नाम इंदिरा आवास पत्र में निवेशित करना है। 18 वर्ष के पश्चात् 25,000 रुपये के रूप में निवेशित धन कन्या को प्राप्त होना है।
- कामधेनु योजना : यह योजना महाराष्ट्र सरकार द्वारा अपंग, निरक्षर व निराधार महिलाओं को स्वरोजगार उपलब्ध कराने हेतु औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में लड़कियों को 30 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था का प्रावधान आदि है।
- लाडली योजना : यह योजना दिल्ली सरकार द्वारा सरकारी अस्पताल में जन्म लेनी वाली कन्या शिशु के माता-पिता को 10 हजार रुपए प्रदान करती है। दिल्ली में पिछले तीन वर्षों से रह रही छात्रा को कक्षा 10 उत्तीर्ण करने पर 5 हजार रुपए तथा कक्षा XII में नामांकन करने पर 5 हजार रुपये प्रदान करती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महिला शिक्षा द्वारा ही राष्ट्र एवं समाज का विकास उसके इतिहास, मातृ भाषा, शिक्षा, महिला शिक्षा प्रगति एवं समृद्धि के आधार पर परिलक्षित होता है। समाज के विकास में महिला शिक्षा की अहम् भूमिका होती है। इसलिए महिलाओं को समाज की रचनात्मक शक्ति कहा जाता है। ताकि राष्ट्र के विकास के साथ राष्ट्र के कर्णधारों को आदर्श व्यक्तित्त्व गुणों से पुष्ट करने वाली महिलाओं को समाज में पूर्ण सम्मान प्राप्त हो। साथ ही प्रत्येक स्तर पर गुणात्मकता के साथ परिमाणात्मक सहभागिता भी प्राप्त हो। जब तक महिलाओं को स्व-अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का अवबोध प्राप्त नहीं होगा, तब तक हमारी सम्पूर्ण मानव जनसंख्या के आधे भाग की आवाज नहीं सुनी जायेगी और हमारी निर्वाचित संस्थाओं व कार्य पालिकाओं की निष्पक्षता पर प्रश्नचिन्ह लगा रहेगा। हम महिला शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा के प्रयासों के साथ ग्रामीण व नगरीय महिलाओं को संगठित कर उनको स्व अधिकारों के प्रति जागरुक कर प्रत्येक क्षेत्र में उनकी सहभागिता को बढ़ाकर महिला सशक्तिकरण कर सकते हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि समाज व देश को सशक्त करने में महिला शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

दास, जी.सी. ''*गाँधी जी और प्राथमिक शिक्षा*'', रोजगार समाचार, 2-8 अक्टूबर 2004

देवपुरा, प्रतापमल, ''*महिला सशक्तिकरण में शिक्षा का महत्त्व*'', कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 54, अंक 5, मार्च 2008

द्विवेदी, पूनम, ''*महिला सशक्तिकरण और वर्तमान कानून*'', कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 52, अंक 5, मार्च 2006

गुप्ता, अंजलि, ''*महिलाओं की स्थिति पर वैश्वीकरण का प्रभाव*'', कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 52, अंक 5, मार्च 2006

कुमार, दिनेश एवं भूषण, बजरंग, ''*महिला सशक्तिकरण*'', कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 51, अंक 5, मार्च 2006

कुमार, नीरज, ''*महिला सशक्तिकरण की कुछ कोशिशें*'', कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 53, अंक 5, मार्च 2007

मिश्र, कृष्ण कुमार एवं संगमकर, नमिता, ''*भारत में महिला शिक्षा: दशा एवं दिशा*'' कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 52, अंक 5, सितंबर 2005

पाठक, इन्दु, ''*शिक्षा तथा महिला सशक्तिकरण*'' कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 51, अंक 11, सित. 2005

सिंह, सविता, ''*गाँधी और महिला सशक्तिकरण*'', रोजगार समाचार, अंक 26, 28 सितंबर 4 अक्टूबर, 2002

सिंह, बहादुर करण, ''*महिला अधिकार व सशक्तिकरण*'', कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 52, अंक 5, मार्च 2006

शाह एवं सिंह, ''*गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता*'', रोजगार समाचार, अंक 43, 24–30 जून 1998

त्रिपाठी, कुसुम, ''*महिलाएं: दशा और दिशा*'', कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 52, अंक 5, मार्च 2006

विलानिलम, वी.जे., ''*महात्मा गाँधी और महिलाओं की शिक्षा*'', रोजगार समाचार, अंक 26, 26 सितंबर से 2 अक्टूबर 1998

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 17, अंक 3, दिसंबर 2010

शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों का तुलनात्मक अध्ययन

कुसुम यदुलाल* और **शशिभूषण त्रिपाठी****

प्रस्तावना

किसी भी देश या समाज की उन्नति का अवलोकन वहां के व्यक्तियों की योग्यता एवं गुणात्मकता के आधार पर किया जा सकता है। एक राष्ट्र अथवा समाज के लिए सबसे महत्वपूर्ण मानवीय साधन है 'व्यक्ति'। प्रत्येक व्यक्ति को यह सुविधा है कि वह स्वतंत्रतापूर्वक अपना उतना विकास करे, जितना कि उसमें विकास करने की क्षमता है। भारतीय संस्कृति परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रही है इसलिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पाश्चात्य एवं भौतिकवाद के दर्शन होते हैं। इस कारण से शिक्षा, जो कि मानव की प्रगति का महत्त्वपूर्ण साधन है, इसके मूल्य में भी भारी परिवर्तन आ रहा है। शिक्षा का स्वरूप देश काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।

शिक्षा अनुसंधान एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा संबंधित व्यक्तियों के प्रयासों का समन्वय तथा उचित सामग्री का उपयोग इस प्रकार किया जाये कि मानवीय गुणों का समुचित विकास हो सके।

''शिक्षण तथा सीखने की प्रक्रिया से संबंधित लक्ष्यों तथा नीतियों के विकास को प्रोत्साहित करने वाली सुविधाएं निहित हैं। यह शिक्षण तथा सीखने के उपयुक्त कार्यक्रमों के विकास को प्रोत्साहन प्रदान करता है। शिक्षा प्रशासन में शिक्षण तथा सीखने की प्रक्रिया को संचालित करने के लिए भौतिक मानवीय तत्वों (कर्मचारी वर्ग) की व्यवस्था करना है।

* निर्देशिका : डा. कुसुम यदुलाल, वरिष्ठ प्रवाचिका, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान संकाय, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय), कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दल्ली-110016

** शोधकर्ता : शशिभूषण त्रिपाठी, आचार्य (भाषा विभाग), शिक्षाशास्त्री शोधार्थी, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय), कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली-110016

शिक्षा प्रशासन उपयुक्त बालकों को उपयुक्त शिक्षकों द्वारा समुचित शिक्षा प्राप्त करने के योग्य बनाता है, जिससे वे उपलब्ध आर्थिक साधनों का उपयोग करके अपने प्रशिक्षण से सर्वोच्चता को प्राप्त करने में समर्थ हो सकें।

''शिक्षा प्रशासन का अर्थ है छात्रों के विकास को निर्धारित उद्देश्यों की दिशा में प्रवाहित करना। इस दृष्टि से शिक्षकों को साधन के रूप में प्रयोग करना तथा इस प्रक्रिया का संचालन ऐसे जन-समूहों, जन-समुदायों के संदर्भ में करना है, जो शिक्षा को उद्देश्यों एवं उनकी प्राप्ति के साधन दोनों से भिन्न प्रकार से संबंधित हैं।''

शिक्षा एवं प्रशासन एक साथ मिलकर कार्य करने के लिए समस्त साधनों एवं प्रयासों को क्रियाशील बनाता है। शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में व्यक्ति तथा समाज दोनों ही प्रगति में सहायक हैं और विभिन्न प्रकार के कार्यकर्ता जैसे प्रधानाचार्य, शिक्षक, छात्र, अभिभावक व जनता उसके प्रयासों के समन्वय से संबंधित होते हैं।

विख्यात व्यवहारवादी प्रबंध विचारक अमेरिका निवासी हरवर्ट ए. साइमन द्वारा प्रशासकीय निर्णय व्यवहार को स्पष्ट करने के उद्देश्य से मर्यादित विवेकशीलता मॉडल का प्रतिपादन किया गया था, जिसे प्रशासनिक व्यक्ति अथवा संतृप्तकारी कहा जाता है। यह मंडल व्यक्ति की विकासशीलता पर आधारित है। प्रशासनिक व्यक्ति अपने निर्णयों एवं व्यवहारों में विवेकपूर्ण रहकर अधिकतम लाभार्जन का प्रयास करता है। किन्तु कुछ परिस्थितियों में वह अपने निर्णयों (संतृप्तकारी) से ही संतुष्ट हो जाता है, क्योंकि मानव मस्तिष्क की क्षमता असीमित होती है। अत: प्रशासनिक व्यक्ति अपने व्यवहार और निर्णयों में स्वत: शोध प्रणाली को अपनाते हुए अनुभवसिद्ध नियमों के आधार पर विचार करते हुए वह श्रेष्ठतम स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

शोध का औचित्य

हमारे देश में शिक्षा प्रबंधन की आवश्यकता अंग्रेजी शासनकाल से है। सबसे पहले शिक्षा विभाग की स्थापना हमारे देश में सन् 1855 में हुई थी। इसके पश्चात व्यक्तिगत संस्थाओं का उदय होना प्रारंभ हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप शासकीय और निजी दोनों प्रकार के संस्थाओं के प्रयासों से शिक्षा का विकास होना प्रारंभ हुआ। कुशल शिक्षा का विकास हमारे देश में प्रत्येक स्तर पर हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की परिस्थितियों के बदलने पर शिक्षा के उद्देश्यों, मूल्यों, आदर्शों और मान्यताओं आदि सभी में परिवर्तन होना प्रारंभ हो गया। देश में प्रजातंत्रात्मक शासन की स्थापना हो जाने से शिक्षा का

महत्व और बढ़ गया। नवीन शिक्षा प्रशासन की महत्ता और आवश्यकता प्रतीत हुई।

सर्वप्रथम हमारे कार्य को अपने व्यक्तियों द्वारा दूसरों के साथ सम्पन्न करना होता है। कार्य करते हुए एक व्यक्ति का दूसरे के साथ संबंध होता है। किसी संस्था अथवा किसी विद्यालय में होनेवाले पारंपरिक संबंध से ही कार्य व्यवहार के अंतर्गत प्रशासक तथा विद्यालय के अन्य कर्मचारियों के व्यवहारों को सम्मिलित किया जाता है।

जो वातावरण किसी संगठन से संबंधित होता है। अतएव कार्य व्यवहार का अर्थ ऐसा व्यवहार है जो किसी संस्था के अंतर्गत होता है अर्थात जिसमें प्रशासक या प्रधानाचार्य व अधयापक के व्यवहार सम्मिलित होते हैं। कार्य व्यवहार को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि किसी शैक्षिक नेता की कार्य पद्धति तथा उसकी व्यवहारिक योग्यताएं, जिनसे संगठन के कार्यों का उत्तम प्रभाव होता है। कार्यात्मक व्यवहार के लिए प्रजातंत्र की प्रणाली आवश्यक होती है। कार्यात्मक व्यवहार में भारतीय संविधान के आधारभूत सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए, अर्थात व्यवहार ऐसा होना चाहिए, जिसमें– सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय, भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अवसरों की समानता, तथा भ्रातृत्व की भावना को पूर्णतया अपनाया जाये।

संगठनात्मक व्यवहार के लिए सर्वप्रथम समस्या को समझना। संगठन को खड़ा क्यों किया गया? किसी समस्या का निराकरण किस प्रकार किया जाये? इस संबंध में प्रशासक का दृष्टिकोण स्पष्ट होना चाहिए। समस्या समाधान के लिए संगठनात्मक संतुलन के सिद्धांत को अपनाने का सुझाव सर्वप्रथम हाल्पिन ने दिया था।

प्रशासक को अपने कार्य करने तथा समूह के व्यक्तियों को कार्य करने का पूर्ण उत्तरदायित्व निभाना चाहिए। कोई भी प्रशासक अपने कार्य का संपादन कितनी कुशलता पूर्वक करता है यह बात भी विचारणीय होती है। वस्तुत: समूह कार्य संपादन में प्रशासक व्यवहार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

किसी भी समूह या संगठन का नेता प्रमुख व्यक्ति होता है। उसका मुख्य उत्तरदायित्व संगठन के कार्यों को पूरा करना ही समझा जाता है। मुख्यत: नेता अपने कार्य में सुगमता के लिए अन्य व्यक्तियों को भी सह नेता के रूप में चुन लेता है तथा उत्तरदायित्वों का भी विभाजन कर सकता है। संगठनात्मक व्यवहार के लिए कुछ प्रमुख कार्यों का निर्वाह किया जाना चाहिए यथा समूह के नेता के रूप में उत्तरदायित्वों की अनुभूति प्रशासक को अवश्य होनी चाहिए। किसी निश्चय अथवा निर्णय लेने

में भी प्रशासक को कुशलता का परिचय देना चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने आश्रित व्यक्तियों के लिए नेता के रूप में है तथा अपनों से बड़ों के लिए उस अनुयायी के रूप में कार्य करना है तथा वह अपना आचरण ठीक रूप से कर सकता है।

प्रशासक के निर्णयों का विरोध समूह के कुछ व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है। ऐसी परिस्थितियों में नेता अथवा प्रशासक के व्यवहार की परीक्षा होती है। उसे धैर्यपूर्वक कार्य करने से समूह के व्यक्तियों के वैयक्तिक साहस में वृद्धि करने के लिए प्रशासक को निरंतर अच्छा व्यवहार करते रहना चाहिए।

वास्तव में शैक्षिक नेतृत्व तथा प्रशासकीय व्यवहार दूसरों के लिए आदर्श रूप में होना चाहिए। प्रशासक को एक उत्तम संगठनकर्ता, कार्यकर्ता, नीति निर्धारक तकनीकी ज्ञाता तथा नेता होना चाहिए। शैक्षिक नेतृत्व तथा प्रशासकीय व्यवहार के लिए अनेक गुणों की आवश्यकता है। नेता एवं प्रशासक को तानाशाही के अतिरिक्त अन्य सभी मानवीय गुणों को सीखना चाहिए तथा इन गुणों के व्यवहारिक रूप भी अपनाना चाहिए। बदलती हुई परिस्थितियों में शैक्षिक नेतृत्व के इस स्वरूप को सभी व्यक्तियों ने स्वीकार किया है।

वर्तमान युग में उत्तम प्रशासन अत्यंत आवश्यक है। प्राय: देखा जाता है कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के कार्य व्यवहार में परस्पर समानताओं के साथ विषमताएं भी होती हैं तथा निजी विद्यालयों में शिक्षकों पर अत्यंत नियंत्रण होता है। उन पर अच्छे परीक्षाफल को देने का दबाव निरंतर बना रहता है। कार्य सुचारु व निर्वाध गति से चलता है। परंतु इसके विपरीत शासकीय विद्यालयों के कार्य व्यवहार में भी एक स्तर तक गतिशीलता रहती है।

प्रस्तुत शोधकार्य के अंतर्गत शोधकर्ता ''शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यववहारों का तुलनात्मक अध्ययन'' से ज्ञात करना चाहता है। किसी प्रकार का शैक्षिक प्रशासन विद्यालय की शैक्षिक गुणवत्ता को प्रभावित करता है। इस हेतु शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों का अध्ययन से प्रभाव ज्ञात कर इनका तुलनात्मक अध्ययन करना है।

समस्या कथन

''शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों का तुलनात्मक अधययन''।

पारिभाषिक शब्दावली

1. शासकीय विद्यालय– शासकीय विद्यालय से तात्पर्य है कि जिनका संचालन सरकार के द्वारा किया जाता है।
2. निजी विद्यालय– निजी विद्यालय से तात्पर्य है कि जिनका संचालन व्यक्तिगत रूप से किया जाता है और ये किसी भी स्वायत्त संस्था से पंजीकृत होते हैं।

प्रधानाचार्य

प्रधानाचार्य से तात्पर्य है कि जो विद्यालय एक परिवार, एक समूह, एक समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है, वह विद्यालय को सुचारु रूप से संचालित करता है।

उच्च माध्यमिक तथा महाविद्यालय का प्रशासकीय तथा अकादमिक प्रमुख।

प्रशासकीय कार्य व्यवहार

''प्रशासकीय किसी उपक्रम का वह कार्य है, जो उपक्रम के उद्देश्यों व नीतियों को निर्धारित करने, वित्त, उत्पादन तथा वितरण के कार्यों में समन्वय स्थापित करने तथा उपक्रम के समस्त कार्यों पर नियंत्रण रखने से संबंध रखता है। प्रशासन में नियोजन नीति निर्धारण, समन्वय, नियंत्रण आदि सभी कार्य सम्मिलित हैं जबकि प्रशासन तो एक शाखा के रूप में नीतियों को क्रियान्वित करता है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि ये दोनों शब्द एक ही सिक्के के दो पहलू हैं''।

किसी परिस्थिति में पड़ने पर प्राणी द्वारा प्रदर्शित समस्त प्रतिक्रिया, प्राणी द्वारा किये जानेवाले समस्त कार्य, यह जीवन की विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक चेष्टाओं अथवा क्रियाशीलता से है। अंतराव्य (विसरल) जिसका संबंध भावों एवं संवेगात्मक व्यवहार से है और शाब्दिक (बर्वल) जिसका (संवेगात्मक व्यवहार से है) और संबंध चिन्तन तथा कल्पना आदि से है। व्यवहार ही प्राणी के व्यक्तित्व का परिचायक होता है। अतएव व्यवहार परिष्करण शिक्षा का मूल उद्देश्य माना जाता है।

विद्यालय प्रशासन के कार्य को दो प्रमुख भागों -- प्रशासकीय कार्य तथा नीति निर्धारण में बांटा जा सकता है। प्रथम प्रकार का कार्य केवल दुकानदारी है और दूसरा शैक्षिक नीति से संबंधित है। अब शिक्षा प्रशासक अपनी प्रथम स्थिति में विद्यालय जिस रूप में है उसी का संचालन करता है और दूसरी स्थिति में वह शैक्षिक नीतिज्ञ के नाते विद्यालय को वैसा बनाता है जैसा कि उसे होना चाहिए। एक रूप में वह आज के विद्यालय को चला रहा है और दूसरे रूप में वह कल के विश्व को चलाता है।

मुख्य उद्देश्य

1. शासकीय विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
2. निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार की प्रभावशीलता का अधययन करना।
3. शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
4. शासकीय विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार की प्रभावशीलता का अधयापकों की दृष्टि में तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार की प्रभावशीलता का छात्रों की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करना।
6. शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार की प्रभावशीलता का अभिभावकों की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं

प्रस्तुत शोध अध्ययन में उद्देश्यों के आधार पर निम्न परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है।

मुख्य परिकल्पनाएं

1. शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यां के कार्य व्यवहारों में तुलनात्मक रूप से प्रधानाचार्यों की दृष्टि से कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
2. शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों में अध्यापकों की दृष्टि से कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
3. शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों में छात्रों की दृष्टि से कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
4. शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचायो्र के कार्य व्यवहारों में अभिभावकों की दृष्टि से कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

शोध सीमांकन

प्रस्तुत शोध कार्य का सीमांकन निम्न प्रकार से किया गया है–

1. प्रस्तुत समस्या ''शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों के तुलनात्मक अध्ययन'' तक सीमित है।
2. प्रस्तुत प्रबंध के न्यादर्श के अंतर्गत वाराणसी जिले के 15 शासकीय एवं 15 निजी विद्यालयों का चयन किया गया है। विद्यालयों का न्यादर्श चयन यादृच्छिक न्यादर्श द्वारा किया गया है।
3. प्रस्तुत शोध में शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्य, अध्यापक, छात्र एवं अभिभावकों तक ही सीमित है।
4. प्रस्तुत शोध कार्य के अंतर्गत शासकीय एवं निजी विद्यालयों के अनुसार प्रधानाचार्य, अध्यापक, छात्र एवं अभिभावकों की संख्या क्रमशः 15–15, 100–100, 100–100 तथा 50–50 हैं।

प्रस्तुत शोध कार्य उपर्युक्त सीमाओं को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा।

शोध समस्या से संबंधित साहित्य--

वी. अग्रवाल (1983), नसरीन एरा (1986), एम. दास (1983), ए.के. गुप्ता (1984), आर. कृष्णाराज (1987), ललित कुमारी (1984) और यू. कुमार (1986)। इसके अलावा विभिन्न विद्वानों ने प्रधानाचार्यों के कार्यमूल्य तथा उनके प्रशासनिक प्रयास के मध्य संबंधों का अध्ययन किया। प्रधानाचार्यों के व्यवहार तथा उनके प्रशासनिक प्रभाविता के बीच संबंधों का अधययन किया। प्रधानाचार्यों के स्व–धारणा तथा उनके प्रशासनिक प्रभाविता के बीच संबंधों का अध्ययन करना। प्रधानाचार्यों के स्व–धारणा, कार्यमूल्य तथा व्यवहार का संयुक्त रूप से उनके प्रशासनिक प्रभाविता के साथ संबंधों का अध्ययन।

आर. कृष्णाराज (1987)– ''स्वायत्त तथा संबंधित विद्यालयों में संगठन की रूपरेखा, नेतृत्व व्यवहार और निर्णय क्षमता।''

शोध उद्देश्य

स्वायत्त तथा संबंधित विद्यालयों में संगठन की रूपरेखा, नेतृत्व व्यवहार तथा निर्णय करने की क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन।

शोध परिणाम

संबद्ध विद्यालयों की अपेक्षा स्वायत्त विद्यालयों में अधिक विशेषज्ञता थी। दोनों प्रकार के विद्यालय उच्च स्वरूप के थे। परंतु स्वायत्त विद्यालय अधिक Formalized थे। स्वायत्त विद्यालयों में निम्न श्रेणी का केन्द्रीयकरण था। स्वायत्त विद्यालयों में निम्न श्रेणी पदानुक्रम संपर्क स्वच्छन्द था। स्वायत्त विद्यालयों की अपेक्षा संबद्ध विद्यालयों के विभाग अधिक स्वायत्त होते हैं। नेतृत्व व्यवहार में दोनों प्रकार के विद्यालयों में कोई अंतर नहीं था। दोनों प्रकार के विद्यालय मात्र निम्न आयामों में 15 आयोगों के अध्ययन में से प्रस्तुतीकरण एवं एकीकरण में अलग थे। दोनों विद्यालयों के प्रधानाचार्य निर्णय निर्माण के विचार आयामों में अलग हैं, विनती सलाह, सहमत, ग्राह्यता, न्याय की स्वतंत्रता तथा विधियों की स्पष्टता।

यू. कुमार (1986) – ''कार्यमूल्य, ढंग (तरीके) और स्वधारणा के संबंधों में विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के प्रशासनिक प्रभाविता का अध्ययन।''

शोध उद्देश्य

प्रधानाचार्यों के कार्यमूल्य तथा उनके प्रशासनिक प्रयास के मध्य संबंधों का अध्ययन करना। प्रधानाचार्यों के व्यवहार तथा उनके प्रशासनिक प्रभाविता के बीच संबंधों का अध्ययन करना। प्रधानाचार्यों के स्व-धारणा तथा उनके प्रशासनिक प्रभावित के बीच संबंधों का अध्ययन करना। प्रधानाचार्यों के स्व-धारणा, कार्यमूल्य तथा व्यवहार का संयुक्त रूप से उनके प्रशासनिक प्रभाविता के साथ संबंधों का अध्ययन।

शोध परिणाम

प्रधानाचार्यों का कार्यमूल्य उनके प्रशासनिक प्रभाविता से महत्वपूर्ण ढंग से संबंधित था। शक्ति आधारित कार्य मूल्य तथा कार्य-स्वतंत्रता आधारित कार्यमूल्य प्रशासनिक प्रभाविता के संदर्भ में सामायिक पाए गये। प्रधानाचार्यों का व्यवहार, शिक्षकों छात्रों तथा मंत्रिय कर्मचारियों की ओर उनके प्रशासनिक कार्यों में सहयोग पाया गया। स्वधारणा, प्रशासनिक प्रभाविता से महत्वपूर्ण रूप से संबंधित नहीं है।

आर.एम. पटेल (1983) – ''गुजरात राज्य के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के नेतृत्व व्यवहार का अध्ययन।''

प्रधानाचार्यों और शिक्षकों द्वारा वास्तव में और उनके आदर्शों के अवरूप, अनुभूत

किये गये गुजरात राज्य के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के नेतृत्व व्यवहार के तरीकों को परिचित कराना। विद्यालयों के संगठनात्मक वातावरण को चिन्हित करना। इन विद्यालयों में कार्य कर रहे शिक्षकों की कार्य गति विकास स्तर का मूल्यांकन करना। प्रधानाचार्यों के नेतृत्व व्यवहार विद्यालय के संगठनात्मक वातावरण तथा अध्यापकों के कार्यों के विकास में अंतरसंबंध का अध्ययन करना।

यह अध्ययन सर्वेक्षण विधि द्वारा किया गया। प्रस्तुत शोध-अध्ययन में यादृच्छिक प्रतिदर्श के आधार पर 949 उच्च माध्यमिक विद्यालयों में से 15 निजी एवं 15 शासकीय विद्यालयों का चयन किया गया, जिसके अंतर्गत क्रमश: 100-100 अध्यापकों का चयन किया गया।

शोध न्यादर्श

प्रस्तुत शोध प्रबंध का उद्देश्य शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों का तुलनात्मक अध्ययन करना था। इसलिए शोधकर्ता ने न्यादर्श चयन के लिए उद्देश्यों को ध्यान में रखकर प्रायिकता विधि का प्रयोग करते हुए यादृच्छिक के न्यादर्श का चयन किया।

शोध अध्ययन का न्यादर्श

विद्यालयों की संख्या एवं प्रकार	प्रधानाचार्य	शिक्षक	छात्र		अभिभावक
शासकीय विद्यालयों की संख्या - 15	15	100	50	50	50
निजी विद्यालयों की संख्या - 15	15	100	50	50	50
योग	30	200	200		100

शोध उपकरण

प्रस्तुत लघुशोध में चूंकि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों का तुलनात्मक अधययन करना था, इसके लिए ''बंगलोर विश्वविद्यालय के 'डा. हसीन ताज' की प्रशासकीय व्यवहार स्तर पर रचित प्रश्नावली और डा. मर्मर मुखोपाध्याय कृत प्रश्नावली का उपयोग किया गया।

शोध उपकरण की व्याख्या

प्रधानाचार्य की प्रश्नावली में से यह उनके विचार, ज्ञान जानने के लिए है, जैसे नियोजन,

संगठन, संपर्क, निर्णय क्षमता, समय की पाबंदी, शिक्षकों के साथ संबंध, प्रबंधन के तरीकों से संबंधित प्रश्न पूछे गये, जिनका उत्तर चिन्हित करना था।

शिक्षक की प्रश्नावली में प्रधानाचार्य के कार्य-व्यवहार को जानने के लिए है। जैसे– नेतृत्व, शिक्षक गुणवत्ता, संपर्क एवं संवाद, विद्यार्थी सहपाठ्यक्रम विधियां, अध्यापन विधियां, कार्यालय प्रबंध, संबंध, भौतिक संसाधन, परीक्षा प्रणाली, कार्य संतुष्टि प्रतिष्ठा आदि। विद्यार्थी की प्रश्नावली से प्रधानाचार्य के कार्य-व्यवहार को जानने के लिए है, जैसे– अनुशासन, सहायक प्रणाली, मानव संबंध और शैक्षणिक तथा गैर शैक्षणिक गतिविधियों के मानदंड के प्रति उनका बोध आदि। अभिभावकों के प्रश्नावली से प्रधानाचार्य के कार्य व्यवहार को जानने के लिए है। जैसे– अभिभावकों के प्रति दृष्टिकोण, शिक्षकों एवं प्राचार्य तक उनकी पहुँच, मान्यता, शिक्षकों के विद्यार्थियों के साथ संबंध आदि।

प्रदत्तों का संकलन

प्रस्तुत शोधकार्य के लिए शोधकर्ता तथ्यों के संकलन के लिए निर्धारित तिथि को चयनित विद्यालयों में गया था। प्रधानाचार्य से मिलकर परीक्षण की अनुमति प्राप्त की। उसके बाद शोधकर्ता ने सहयोगी अध्यापकों के साथ परीक्षण प्रपत्र वितरित कर उन्हें उसमें पूछी गयी आवश्यक प्रविष्टियां भरने को कहा। परीक्षण समाप्ति के उपरांत सभी छात्रों से प्रपत्रों का संकलन कर शोधकर्ता ने सहयोगी अध्यापकों तथा प्रधानाध्यापकों का ध न्यवाद ज्ञापन देकर सम्मानित किया।

प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग

वर्तमान शोध अध्ययन में प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु वर्णनात्मक एवं अनुमानात्मक सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया - वर्णनात्मक सांख्यिकीय विधियां – विभिन्न परीक्षणों पर प्राप्त प्राप्तांकों की एवं वितरण का अध्ययन करने हेतु अधोलिखित विवरणात्मक सांख्यिकीय विधियों – मध्यमान, मानक विचलन परीक्षण का प्रयोग किया गया।

मध्यमान, मानक विचलन परीक्षण, टी टेस्ट – प्रस्तुत शोधकार्य में शासकीय एवं निजी विद्यालय के प्रधानाचार्यों, शिक्षकों, छात्रों, अभिभावकों का मान निकाल कर टी परीक्षण का मान ज्ञात किया गया है।

सांख्यिकीय विश्लेषण, संश्लेषण एवं परिकल्पना का परीक्षण

प्रधानाचार्य प्रश्नावली का सांख्यिकी विश्लेषण

प्रधानाचार्य की प्रश्नावली का सांख्यिकी विधि से विश्लेषण किया गया और सर्वप्रथम सभी समूहों को एकत्रित कर क्रम दिया गया तथा जिसमें मध्यमान प्रामाणिक विचलन तथा मानक त्रुटि मध्यमान भी निकाली गयी तथा परीक्षण किया गया जिस पर 0.05 स्तर पर सार्थक अंतर को देखा गया।

1. प्रधानाचार्य प्रश्नावली– प्रस्तुत शोध अध्ययन संख्या (क) 4.1 का परीक्षण किया गया तथा ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार उपक्षेत्र 'नियोजन' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि शासकीय एवं निजी विद्यालयों का लक्ष्य उद्देश्य समान है अर्थात सभी कार्य को व्यवस्थित ढंग से नियोजन कर किसी कार्य को प्रगति की ओर ले जाने से है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (क) 4.1 स्वीकृत की जाती है।

2. प्रस्तुत शोध अध्ययन परिकल्पना संख्या (क) 4.2 का परीक्षण किया गया तथा ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार उपक्षेत्र 'संगठन' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर है, क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं में भिन्नता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (क) 4.2 अस्वीकृत की जाती है।

3. प्रस्तुत शोध अध्ययन परिकल्पना संख्या (क) 4.3 का परीक्षण किया गया तथा ज्ञात हुआ कि शासकीय विद्यालय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार उपक्षेत्र 'संप्रेषण' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि शासकीय विद्यालय एवं निजी विद्यालय का लक्ष्य उद्देश्य समान हैं अर्थात सभी के साथ अच्छा संप्रेषण होने के साथ शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराकर प्रगति की ओर ले जाने से है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (क) 4.3 स्वीकृत की जाती है।

4. प्रस्तुत शोध अध्ययन परिकल्पना संख्या (क) 4.4 का परीक्षण किया गया तथा ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार उपक्षेत्र 'निर्णय क्षमता' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर है, क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों के निर्णय लेने में भिन्नता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (क) 4.4 अस्वीकृत की जाती है।

5. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया तथा सारिणी संख्या (क) 4.5 से ज्ञात हुआ कि शासकीय विद्यालय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार उपक्षेत्र 'ग्राहक अभिमुखीकरण' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है क्योंकि शासकीय विद्यालय एवं निजी विद्यालय का लक्ष्य उद्देश्य समान हैं अर्थात सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराकर प्रगति की ओर ले जाने से है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (क) 4.5 स्वीकृत की जाती है।

6. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया तथा सारिणी संख्या (क) 4.6 से ज्ञात हुआ कि शासकीय विद्यालय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार उपक्षेत्र 'ग्राहक शिक्षा' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं को जैसे– फर्नीचर, कक्षा कक्ष, खेलकूद मैदान, पुस्तकालय, शिक्षक शिक्षण कार्यक्रम आदि में समानता है, इसी आधाार पर परिकल्पना संख्या (क) 4.6 स्वीकृत की जाती है।

7. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया तथा सारिणी संख्या (क) 4.7 से ज्ञात हुआ कि शासकीय विद्यालय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं पाया गया, क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे– शिक्षण की गुणवत्ता, छात्रों की गुणवत्ता आदि में भिन्नता नहीं है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (क) 4.7 स्वीकृत की जाती है।

8. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया तथा सारिणी संख्या (क) 4.8 से ज्ञात हुआ कि शासकीय विद्यालय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार के उपक्षेत्र 'सहभागिता' में दोनों विद्यालयों के प्रबंधन में सार्थक अंतर नहीं है क्योंकि शासकीय विद्यालयों के लक्ष्य/उद्देश्य समान हैं जैसे अभिभावक के साथ, समाज के साथ संबंध आदि। अर्थात सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराकर प्रगति की ओर ले जाने से है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (क) 4.8 स्वीकृत की जाती है।

9. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया तथा सारिणी संख्या (क) 4.9 से ज्ञात हुआ कि विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार में उपक्षेत्र 'नवाचार' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है। क्योंकि

शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में अधिक लचीलापन के साथ जैसे– कंप्यूटर लैब, पुस्तकालय की सुविधा है तथा नवाचार अपनाने की अधिक स्वतंत्रता है। वे नये–नये शोधकार्य करते हैं तथा तुरंत अपना लेते हैं। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (क) 4.9 स्वीकृत की जाती है।

10. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया तथा सारिणी संख्या (क) 4.10 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार के उपक्षेत्र 'अभिभावकों का सहयोग' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है क्योंकि दोनों विद्यालयों का लक्ष्य/उद्देश्य समान है जैसे बालक की शिक्षा, प्रगति, उपलब्धि आदि में सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराकर प्रगति की ओर ले जाने से है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (क) 4.10 स्वीकृत की जाती है।

11. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया तथा सारिणी संख्या (क) 4.11 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार के उपक्षेत्र 'सम्पर्क' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि दोनों विद्यालयों का लक्ष्य/उद्देश्य समान है जैसे प्रधानाचार्य शिक्षक से सम्पर्क, छात्र से सम्पर्क आदि सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराकर प्रगति की ओर ले जाने से है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (क) 4.11 स्वीकृत की जाती है।

12. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया तथा सारिणी संख्या (क) 4.12 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहार के उपक्षेत्र 'प्रश्नावली के समग्र उपक्षेत्र' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर है क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे संपर्क स्थापित करना, अभिभावकों का सहयोग, नवाचार अपनाने आदि में भिन्नता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (क) 4.12 अस्वीकृत की जाती है।

अध्यापक प्रश्नावली सांख्यिकीय विश्लेषण से प्राप्त परिणाम

1. अध्यापक प्रश्नावली – प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ख) 4.13 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य व्यवहार के क्षेत्र में 'नेतृत्व' में दोनों विद्यालयों के

कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे कक्षा प्रबंधन का नेतृत्व, छात्र पर नियंत्रण आदि में भिन्नता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (ख) 4.13 स्वीकृत की जाती है।

2. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ख) 4.14 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य व्यवहार के क्षेत्र 'शिक्षक गुणवत्ता' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे शिक्षक में पढ़ाने की तैयारी, शिक्षक का दक्ष होना, वचनबद्धता आदि में भिन्नता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (ख) 4.14 स्वीकृत की जाती है।

3. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ख) 4.15 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य व्यवहार के क्षेत्र 'संपर्क एवं पारस्परिक संवाद' दोनों में विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे परिवेश के साथ संबंध, वातावरण आदि में भिन्नता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (ख) 4.15 स्वीकृत की जाती है।

4. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ख) 4.16 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य व्यवहार के क्षेत्र 'विद्यार्थी' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है। क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सविधाओं जैसे शैक्षणिक अधिगम, छात्रों को खेलकूद आदि में समानता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (ख) 4.16 स्वीकृत की जाती है।

5. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ख) 4.17 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य व्यवहार के क्षेत्र 'सह पाठ्यक्रम गतिविधियां' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है। क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रम, छात्रों को खेलकूद आदि में

समानता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (ख) 4.17 स्वीकृत की जाती है।

6. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ख) 4.18 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य व्यवहार के क्षेत्र 'अध्यापन' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है। क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे निजी में प्रशिक्षित शिक्षक, विषय विशेषज्ञ एवं शासकीय में इसका न होना आदि में भिन्नता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (ख) 4.18 स्वीकृत की जाती है।

7. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ख) 4.19 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य व्यवहार में कोई अंतर नहीं है क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे सहायक सेवाएं, प्रधानाचार्य के द्वारा दी गयी कार्य आदि में समानता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (ख) 4.19 स्वीकृत की जाती है।

8. प्रस्तुत शोध अधययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ख) 4.20 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्य शिक्षकों, छात्रों तथा अभिभावकों से संबंध अच्छे हैं तथा दोनों में समानता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (ख) 4.20 स्वीकृत की जाती है।

9. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ख) 4.21 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है। क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे शिक्षक का शिक्षकों के साथ संबंध, शिक्षक का प्रधानाचार्य के साथ संबंध आदि में भिन्नता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (ख) 4.21 स्वीकृत की जाती है।

10. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ख) 4.22 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य

व्यवहार में सार्थक अंतर है। क्योंकि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य व्यवहार के क्षेत्र 'परीक्षा' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर नहीं है क्योंकि दोनों विद्यालयों का लक्ष्य समान है जैसे वस्तुनिष्ठ, लघुत्तरीय, दीर्घोत्तरीय, प्रत्यक्ष विधि, खण्डान्वय विधि आदि सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराकर प्रगति की ओर ले जाने से है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (ख) 4.22 स्वीकृत की जाती है।

11. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ख) 4.23 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य व्यवहार के क्षेत्र 'व्यवसाय संतुष्टि' में दोनों विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर है, क्योंकि शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे शिक्षकों का मनोबल आदि में भिन्नता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (ख) 4.23 स्वीकृत की जाती है।

12. प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ख) 4.24 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के शिक्षक के कार्य व्यवहार में सार्थक अंतर है, क्योंकि शासकसीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे नेतृत्व क्षमता, गुणवत्ता, विद्यार्थी की उपलब्धि आदि में भिन्नता है। इसी आधार पर परिकल्पना संख्या (ख) 4.24 स्वीकृत की जाती है।

छात्रों प्रश्नावली सांख्यिकीय विश्लेषण से प्राप्त परिणाम

छात्र प्रश्नावली– प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (ग) 4.25/26 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थी के कार्य व्यवहार के क्षेत्र 'विद्यार्थी प्रत्यक्षीकरण' में दोनों विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे विद्यालय परिवेश/वातावरण आदि में भिन्नता है। इसी आधार पर परिकल्पना (ग) 4.25/26 अस्वीकृत की जाती है।

अभिभावक प्रश्नावली सांख्यिकीय विश्लेषण से प्राप्त परिणाम

अभिभावक प्रश्नावली– प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना का परीक्षण किया गया और सारिणी संख्या (घ) 4.27 से ज्ञात हुआ कि शासकीय एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थी के कार्य व्यवहार के क्षेत्र 'अभिभावक प्रत्यक्षीकरण' में दोनों विद्यालयों की

अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न सुविधाओं जैसे विद्यालय परिवेश/वातावरण आदि में भिन्नता है। इसी आधार पर परिकल्पना (ग) 4.27 स्वीकृत की जाती है।

शोध अध्ययन से प्राप्त परिणाम

1. शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों में प्रधानाचार्य की दृष्टि से सार्थक अंतर है जो (ज झ 2.56, च ढ 0.05) क्रांतिक मान से अधिक है। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।
2. शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों में शिक्षकों की दृष्टि से सार्थक अंतर नहीं है जो कि (ज त्र 0.52, च ढ 0.05) क्रांतिक मान से कम है। अत: शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।
3. शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों में छात्रों की दृष्टि से सार्थक अंतर है जो कि (ज त्र 3.10, च ढ 0.05) तथा (ज त्र 2.30ए च ढ 0. 05) क्रांतिक मान से अधिक है। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।
4. शासकीय एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के कार्य व्यवहारों में अभिभावकों की दृष्टि से सार्थक अंतर है जो कि (ज त्र 2.26, च ढ 0.05) क्रांतिक मान से अधिक है। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

शोध निष्कर्ष

प्रधानाचार्य प्रश्नावली के द्वादश उपक्षेत्र 'प्रश्नावली के समग्र उपक्षेत्र' में दोनों विद्यालयों में अंतर होने का कारण शासकीय विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों में विभिन्न प्रकार की सुविधाएं अच्छी पायी जाती हैं। जैसे संपर्क स्थापित करना अभिभावकों का सहयोग, नवाचार अपनाने आदि में छूट दी जाती है, जिससे शासकीय की अपेक्षा विद्यालयों में विभिन्न प्रकार की सुविधाएं अच्छी पायी जाती हैं जैसे– संपर्क स्थापित करना, अभिभावकों का सहयोग, नवाचार अपनाने आदि में छूट दी जाती है, जिससे शासकीय की अपेक्षा निजी विद्यालयों का आगे बढ़ना स्वाभाविक है।

शिक्षक प्रश्नावली के द्वादश क्षेत्र 'प्रश्नावली के समग्र क्षेत्र' में दोनों विद्यालयों में अंतर होने का कारण शासकीय की अपेक्षा निजी विद्यालय के शिक्षक में निहित गुण जैसे– गुणवत्ता, विद्यार्थी की उपलब्धि आदि से है, जिससे उसका अधिक विकास स्वाभाविक है।

विद्यार्थी प्रश्नावली के समग्र क्षेत्र 'विद्यार्थियों का प्रत्यक्षीकरण' के संदर्भ में

शासकीय और निजी विद्यालय के कार्य व्यवहार में सार्थक भिन्नता पायी गयी। यह भिन्नता विद्यालयों के कार्य व्यवहार में सार्थक भिन्नता पायी गयी। यह भिन्नता विद्यालय परिवेश / वातावरण के कारण भी हो सकती है। क्योंकि शासकीय विद्यालयों में छात्रों का प्रत्यक्षीकरण विद्यालय प्रमुख पर निर्भर करता है। इसके विपरीत निजी विद्यालयों में विद्यालय प्रमुख का व्यवहार कठोर होने के कारण छात्रों का प्रत्यक्षीकरण शैक्षिक और गैर-शैक्षणिक विधियों के अनुसार सही दिशा की ओर प्रेरित होता है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा दिए गए सुझाव

प्रधानाचार्य के लिए सुझाव

1. प्रधानाचार्य और अध्यापक, कर्मचारी के बीच अच्छे संबंध होना चाहिए। उसे व्यावहारिक अधिक होना चाहिए।
2. प्रधानाचार्य को संकाय का विश्वास हासिल कर गतिशील व्यक्तित्व को अपनाना चाहिए।
3. संस्थान में महत्त्वपूर्ण संसाधन जुटाने का प्रयास करना चाहिए, जिससे विद्यालय सुव्यवस्थित संचालित हो सके।
4. प्रधानाचार्य को समय-समय पर शिक्षक एवं छात्र की सहायता करनी चाहिए।

शिक्षक के लिए सुझाव

1. शिक्षक को समुचित रूप से प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए। यदि कोई है तो सेमिनार में भाग लेना तथा रिफेरेशर कोर्स करना चाहिए।
2. शिक्षक को समय-समय पर दूसरी संस्थाओं में भी जाना चाहिए। इससे ज्ञान का आदान-प्रदान होता है तथा क्षमता का विकास होता है।
3. शिक्षक को सह-पाठ्यचर्या का कार्यकलापों में हिस्सा लेना चाहिए। इससे मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धन होता है।
4. शिक्षक को कार्यालय में पूर्ण सहयोग करना चाहिए। समय से उपस्थित तथा जानकारी देने से कार्य सुव्यवस्थित चलता है तथा अनुशासन की स्थापना होती है।
5. शिक्षक को प्रधानाचार्य के पीछे उनकी आलोचना नहीं करनी चाहिए बल्कि उन्हें कमियां बताकर सुझाव देना चाहिए। इससे समस्याओं के व्यावहारिक हल प्राप्त होते हैं।

6. शिक्षक को अपने विषय का विशेषज्ञ तो होना ही चाहिए, साथ-साथ अन्य विषयों का भी ज्ञान उसे होना चाहिए। इससे उसे पाते समय छात्रों के सम्मुख ज्ञान को अन्य विषय से जोड़ने व समझाने में आसानी होती है।

विद्यार्थी के लिए सुझाव

1. विद्यार्थी को अपने शिक्षक को अपने पिता के समान आदर करना चाहिए। इससे विद्यालय का वातावरण घर जैसा तथा अच्छा होता है जो छात्रों के विकास के लिए आवश्यक है।
2. विद्यार्थी को अपने कक्षा में नियमित रूप से आना चाहिए। इससे अनुशासन की स्थापना होती है तथा अच्छी आदतों का विकास होता है।
3. विद्यार्थी की अपनी समस्या समाधानों के बारे में शिक्षक से समय-समय पर चर्चा करनी चाहिए। इससे छात्रों के नेतृत्व शक्ति का विकास तथा समस्याओं को शिक्षक तक पहुंचाया जा सकता है।
4. विद्यार्थी में अभिव्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए।
5. शिक्षकों से विद्यार्थी का विकास होता है। उन्हें अनावश्यक परेशान नहीं करना चाहिए। इससे संबंध खराब होते हैं और अनुशासनहीनता का विकास होता है।
6. पुराने विद्यार्थियों को संस्थान से संपर्क बनाये रखना चाहिए। इससे समस्याओं के समाधान मिलकर ढूंढ़ सकते हैं तथा मिलकर नवीन शोध को अपना सकते हैं।
7. विद्यार्थी को अपने संस्थान पर गर्व होना चाहिए तथा विद्यार्थी जीवन को यादगार बनाना चाहिए।
8. विद्यार्थी को अपने संस्थान के लिए कार्य करने की भावना होनी चाहिए।
9. विद्यार्थी को अपनी कमियों को शिक्षक को बता देनी चाहिए तथा उनसे समय-समय पर मार्गदर्शन प्राप्त करते रहना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर परामर्श लेना चाहिए।
10. विद्यार्थी के अपने लक्ष्य के प्रति सुदृढ़ होना चाहिए। इससे विद्यार्थी का स्वयं एवं परिवार का तो विकास होता ही है, साथ-साथ विद्यालयों एवं शिक्षकों तथा विद्यार्थी वर्ग का भी सर्वांगीण विकास होता है।

अभिभावक के लिए सुझाव

1. अभिभावक को विद्यालय के भविष्य की योजना बनाने में शामिल होना चाहिए। इससे योजना व्यावहारिक बनती है।
2. अभिभावक को वार्षिक खेल-कूद और अन्य ऐसे कई कार्यक्रमों के आयोजन में शामिल होना चाहिए। इससे बच्चों में उत्साह उत्पन्न होता है।
3. अभिभावक को विद्यालय में जाकर अपनी अपेक्षाओं को बताना चाहिए। इससे स्कूल के सर्वांगीण विकास में मदद मिलती है।
4. अभिभावक को अपने बच्चे का समय-समय पर निरीक्षण करना चाहिए। इससे उनका संपूर्ण रूप से विकास होता है।
5. अभिभावक को संस्थान में आते रहना चाहिए और शिक्षकों से बात करनी चाहिए। इससे छात्रों के गुण अवगुण से अध्यापक परिचित होते हैं तथा कमियां दूर कर सकते हैं।
6. अभिभावक को अनुशासन पालन में मदद करनी चाहिए तथा अनुशासनहीनता करने वाले अभिभावकों को भी समझना चाहिए। अनुशासन से विद्यालय का वातावरण अच्छा एवं सौहार्द होगा तथा छात्रों का विकास उत्तम होगा।

शैक्षिक निहितार्थ

किसी भी अनुसंधान से प्राप्त निष्कर्ष की शैक्षिक उपयोगिता को उसका शैक्षिक निहितार्थ कहा जाता है, जो निम्नलिखित रूप से व्यक्त किये जाते हैं–

1. प्रस्तुत अध्ययन से शासकीय एवं निजी विद्यालयों के छात्रों के कार्य व्यवहार संबंधी विभिन्न समस्याओं एवं गुणों का पता चलता है। इससे नीति-निर्देशक, प्रशासन, प्रधानाचार्य, अध्यापक, अभिभावक, छात्र सभी समस्याओं से अवगत होते हैं।
2. शिक्षकों को अध्यापन के समय छात्रों में कार्य व्यवहार के विकास हेतु विभिन्न क्रियाकलापों की सही जानकारी प्राप्त होती है।
3. पाठ्यक्रम में शिष्याचार, देशप्रेम, सत्यनिष्ठा, ईमानदारी इत्यादि से संबंधित विषयों का अधिकाधिक समावेश कैसे किया जाये, इसकी जानकारी प्राप्त होती है।
4. कार्य व्यवहार शिक्षा के सैद्धांतिक ज्ञान का व्यावहारिक रूप में उपयोग छात्रों की

सर्वांगीण उन्नति में कैसे सहायक हो सकता है, इसकी जानकारी से लाभान्वित होते हैं।

5. शासकीय एवं निजी विद्यालयों में छात्रों के कार्य व्यवहार संवर्द्धन द्वारा शिक्षक एवं छात्र के संबंध आदर्शपूर्ण हो सकते हैं। इससे सभी विद्यालय के प्रधानाचार्य, अध्यापक, छात्र प्रेरणा ले सकते हैं।
6. छात्रों में नेतृत्व, गैर-शैक्षणिक क्रियाकलापों का उचित विकास कैसे किया जा सकता है, जिससे संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन कैसे प्राप्त किया जा सकता है, की जानकारी प्राप्त होती है।
7. विद्यालयों के शैक्षिक वातावरण में परिवर्तन किया जाये तथा क्या कमियां हैं, उन्हें कैसे दूर किया जाये, मूल्यांकन कर कमियां दूर कर सकते हैं।

प्रस्तुत शोध में उपलब्ध प्रश्नावली के माधयम से संपूर्ण गुणवत्ता को समझकर अपने-अपने विद्यालयों के प्रबंधन का मूल्यांकन कर कमियों का पता लगाकर उन पर जीत हासिल की जा सकती है, जिससे शैक्षिक वर्ग के सभी कर्मचारी संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन को समझ कर अपना सकते हैं तथा विद्यालय का सर्वांगीण विकास कर सकते हैं।

भावी शोध की संभावनाएं

प्रस्तुत शोधकार्य के अंतर्गत माध्यमिक विद्यालयों में प्रधानाचार्यों के प्रशासनिक दायित्व एवं व्यावसायिक विकास का समीक्षात्मक अध्ययन करना था। इस हेतु इस शोधकार्य के अंतर्गत प्रधानाध्यापकों, अध्यापकों, छात्रों एवं अभिभावकों को समाहित कर इस शोधकार्य को पूर्ण किया गया। भविष्य में इस प्रकार के शोधकार्य विभिन्न राज्यों तथा विभिन्न आयामों को समाहित कर इस शोधकार्य को दोहराया जा सकता है, जिससे इसकी विश्वसनीयता एवं वैधता को बढ़ाया जा सकता है।

संदर्भ

भाई योगेन्द्रजीत – शैक्षिक एवं विद्यालय प्रशासन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1998

शर्मा, डी.आर.ए. – शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबंधन, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ, 2002

श्रीमती सुखिया, एस.पी. – विद्यालय प्रशासन एवं संगठन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2000

शर्मा, आर.ए. – मापन और मूल्यांकन, लायन बुक डिपो, मेरठ, 1001

व्यास, हरीशचन्द्र एवं व्यास, कैलाश चन्द्र – शैक्षिक प्रबंध और शिक्षा की समस्याएं, शैक्षिक समस्याएं, आर्य बुक डिपो, 1999

शर्मा, डा. देवदत्त – शैक्षिक कार्य व्यवहार के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1999

प्रसाद, केवल – विद्यालय व्यवस्था, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2000

शर्मा, आर.ए. – शैक्षिक अनुसंधान के मूलभूत सोपान, लायन बुक डिपो, मेरठ, 1998

गुप्ता, एस.पी. – आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2001

प्रो. मुखोपाध्याय मर्मर – शिक्षा में संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन, विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2002

मल्होत्रा, पी.एल. एवं अन्य – भारत में विद्यालयी शिक्षा : वर्तमान स्थिति और भावी आवश्यकताएं, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद, अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली110016

सुखिया, एस.पी. – शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1990

रमन बिहारी लाल – शैक्षिक मापन मूल्यांकन एवं सांख्यिकी, रस्तोगी, पब्लिकेशन बुक, शिवाजी रोड, 2000

पाण्डेय, के.पी. – शैक्षिक अनुसंधान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006

आर.पी. भटनागर – शिक्षा अनुसंधान, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2007

डा. रमाकान्त मिश्र – शैक्षिक प्रविधि, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी

शर्मा, आर.ए. – शिक्षा अनुसंधान, लाल बुक डिपो, मेरठ

प्ररिप्रेक्ष्य
व ं 17, अंक 3, दिसंम्बर 2010

शोध टिप्पणी/संवाद

उच्च एवं निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्यार्थियों की आवश्यकताएं और उनका समग्र व्यक्तित्व विकास

ऊषा मिश्रा* और **मोनिका सरोज****

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उच्च एवं निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्यार्थियों की व्यक्तित्व आवश्यकता का अध्ययन करना है। इस अध्ययन हेतु यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य के इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर तथा वाराणसी शहर से कक्षा 9 के 168 मूक-बधिर विद्यार्थियों (88 छात्र एवं 80 छात्राओं) का चयन किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शाह एवं भार्गव (1987) द्वारा निर्मित आकांक्षा-स्तर मापनी तथा आर. आर. त्रिपाठी (1979) द्वारा निर्मित व्यक्तित्व आवश्यकता अनुसूची का प्रयोग किया गया हैं। एकत्रित प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु प्रतिशत, मध्यमान, मानक-विचलन व टी-अनुपात प्रविधि का प्रयोग किया गया। अध्ययन से प्राप्त परिणाम इस प्रकार हैं- 1. उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्याथियों में सानिध्य, व्यवस्था व सम्प्राप्ति की मांग सबसे अधिक प्रबल पाई गईं जबकि आत्महीनता व परिहार की मांग सबसे कम प्रबल पाई गई। 2. निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्याथियों में पराश्रय, आत्महीनता व प्रतिक्रिया की मांग सबसे अधिक प्रबल पाई गई, जबकि सम्प्राप्ति की मांग सबसे कम प्रबल है। 3. उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों की व्यक्तित्व आवश्यकताओं में सम्प्राप्ति, स्वायत्तता, परिहार, प्रभुत्व, आत्महीनता तथा सहनशीलता

* प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
** शोध छात्रा (यू.जी.सी.-नेट) शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

की मांग में सार्थक अन्तर पाया गया। 4. उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं की व्यक्तित्व आवश्यकताओं में सम्प्राप्ति, व्यवस्था, सानिध्य, पराश्रय तथा आत्महीनता की मांग में अन्तर पाया गया।

प्रस्तावना

सभी बालक शारीरिक व मानसिक रूप से एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इन्हीं वैयक्तिक भिन्नताओं के महत्व के साथ ही एक वर्ग मूक-बधिर विकलांग बालकों का है। ये बालक प्राय: सुनने और बोलने में असमर्थ होते हैं, जिस कारण इन्हें एक सामान्य बालक की तुलना में परिवार, समाज, विद्यालय व मित्रों में समायोजन स्थापित करने में अत्यन्त कठिनाई होती है। आज सभी दृष्टिकोणों से मूक-बधिर बालकों का अध्ययन करना आवश्यक हो गया। प्रत्येक बालक का व्यवहार प्राय: उसकी प्रबल माँगों द्वारा निर्धारित होता है (मुरे, 1938), तथा इन्हीं माँगों के आधार पर बालक किसी एक निश्चित सीमा तक अपनी आकांक्षा स्तर को निर्धारित करता है व उसके अनुरूप कार्य करने के लिए प्रेरित होता है। बालक में आकांक्षा स्तर उच्च भी हो सकता है व निम्न भी। आकांक्षा स्तर उच्च होने पर बालक अनेक बार प्रेरित होकर कार्य करता है, परन्तु निम्न होने पर उसमें आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। विकलांग बालकों में अपनी विकलांगता व शारीरिक निर्योग्यताओं के कारण एक प्रकार की हीन भावना घर करने लगती है। वे अपने आपको सामान्य बालकों की तुलना में कमतर समझने लगते हैं। उनके द्वारा खुद को समाज पर एक बोझ समझा जाता है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि मूक-बधिर बालकों के आकांक्षा का अध्ययन कर उनके जीवन लक्ष्यों को सदैव उच्च रखा जाये। उनके आवश्यकताओं, जीवन लक्ष्य व आकांक्षा के मध्य उनकी विकलांगता को कभी भी बाधा नहीं बनने देना चाहिए।

गुप्ता (1980) ने अपने अध्ययन में आकांक्षा स्तर और व्यक्तित्व समायोजन में निम्न नकारात्मक सम्बन्ध पाया। भाटिया (1980) ने आकांक्षा स्तर और निष्पत्ति की मांग में निम्न सकारात्मक सम्बन्ध पाया। वहीं भार्गव और धीर (1980) ने यथार्थवादी और अयथार्थवादी आकांक्षा स्तर वाली बालिकाओं की मांग नमूनों का तुलनात्मक अध्ययन किया व मांग निष्पत्ति, मांग प्रभुत्व, मांग व्यवस्था, मांग सानिध्य, मांग पराश्रय, मांग परिवर्तन व मांग वैभिन्नता में सार्थक अन्तर पाया। सिंह (1997) ने विकलांग बालकों के आकांक्षा स्तर व शैक्षिक निष्पत्ति के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध पाया।

शोधकर्त्री ने सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण के उपरान्त यह अनुभव किया कि इन बिन्दुओं को ध्यान में रखकर शोध करने की आवश्यकता हैं, जिससे कि मूक-बधिर बालकों के व्यक्तित्व का स्वस्थ्य सन्तुलित एवं श्रेष्ठतम विकास किया जा सके तथा उनकी आवश्यकताओं व आकांक्षाओं के अनुरूप उन्हें उचित शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन दिया जा सके।

अध्ययन के उद्देश्य - प्रस्तुत शोध अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्यार्थियों की व्यक्तित्व आवश्यकताओं का अध्ययन करना।
2. उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों के व्यक्तित्व आवश्यकताओं की तुलना करना।
3. उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं की व्यक्तित्व आवश्यकताओं की तुलना करना।

परिकल्पना - उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निम्नलिखित परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है-

1. उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों के व्यक्तित्व आवश्यकताओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं की व्यक्तित्व आवश्यकताओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

तकनीकी शब्दों की परिभाषा- प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त पदों की व्यावहारिक परिभाषाएं अग्रलिखित हैं-

मूक-बधिर बालक- मूक-बधिर बालक से आशय ऐसे बच्चों से है, जो आंशिक या पूर्णरूप से अपनी श्रवण शक्ति एवं वाणी क्षमता खो चुके हैं तथा सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं।

आकांक्षा-स्तर - 'आकांक्षा' शब्द उस विशेष ऊँची इच्छा से तात्पर्य रखता है, जो किसी भी व्यक्ति को एक निश्चित सीमा तक लक्ष्य निर्धारण करने व उसके अनुरूप कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। यह एक आन्तरिक व्यक्तित्व सामाजिक प्रेरक है।

व्यक्तित्व आवश्यकता - किसी भी व्यक्ति का व्यवहार प्राय: उसकी प्रबल मांगों से निर्धारित होता है। मुरे (1938) के अनुसार व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है, उस वातावरण के दबावों का समग्र उस व्यक्ति के अन्दर कुछ मांगों को उत्पन्न कर देता है तथा ये मांगें ही व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले व्यवहार को निर्धारित करती हैं।

अध्ययन विधियां एवं न्यादर्श - प्रस्तुत शोध कार्य में वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है तथा यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य के इलाहाबाद, लक्षनऊ, कानपुर तथा वाराणसी शहर से कक्षा 9 के 168 मूक-बधिर विद्यार्थियों (88 छात्र एवं 80 छात्राओं) का चयन किया गया है। उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्यार्थियों के चयन हेतु प्रथम चतुर्थांक (Q1) व तृतीय चतुर्थांक (Q3) की गणना की गई है। सर्वप्रथम मूक-बधिर विद्यार्थियों पर आकांक्षा स्तर मापनी प्रशासित की गई, जिन मूक-बधिर छात्रों के अंक Q1 अर्थात् 3.7 या इससे अधिक थे; उन्हें 'उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों' के समूह में रखा गया है तथा जिनके अंक Q3 अर्थात् -2.4 या इससे कम थे, उन्हें 'निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों' के समूह में रक्षा गया है। उसी प्रकार जिन मूक-बधिर छात्राओं के अंक Q1 अर्थात् 3.4 या इससे अधिक थे, उन्हें 'उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्राओं' के समूह में रखा गया है तथा जिनके अंक Q3 अर्थात् -1.7 या इससे कम थे, उन्हें 'निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्राओं' के समूह में रखा गया हैं।

उपकरण : प्रस्तुत अध्ययन में निम्न उपकरणों का प्रयोग किया गया है-

1. शाह एवं भार्गव (1987) द्वारा निर्मित आकांक्षा-स्तर मापनी।
2. आर. आर. त्रिपाठी (1979) द्वारा निर्मित व्यक्तित्व आवश्यकता अनुसूची।

प्रयुक्त सांख्यिकीय प्रविधि - अध्ययन की प्रकृति एवं उद्देश्यों के आधार पर आये हुए आंकड़ों के विश्लेषण हेतु प्रतिशत, मध्यमान, मानक-विचलन एवं टी-अनुपात विधि का प्रयोग किया गया है।

परिणाम तथा विवेचन- समस्या से सम्बन्धित आंकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर परिणामों को प्राप्त किया गया। प्रस्तुत शोध समस्या के उद्देश्यों पर आधारित परिकल्पनाओं के सम्बन्ध में निम्नलिक्षित परिणाम प्राप्त हुए-

तालिका-1 में दिये गये परिणाम से स्पष्ट है कि उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्याथियों में सानिध्य की मांग (=7.38), व्यवस्था की मांग (=7.23), व सम्प्राप्ति की मांग (=7.06) सबसे अधिक प्रबल हैं, जबकि निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर

तालिका-1

उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्यार्थियों द्वारा व्यक्तित्व आवश्यकता की विभिन्न मांगों में महत्त्व को दर्शाते हुए प्रतिशत-प्राप्तांक

क्र. स.	व्यक्तित्व मांग	प्रतिशत-प्राप्तांक	
		उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्यार्थी	निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्यार्थी
1.	सम्प्राप्ति की मांग	7.06	5.66
2.	स्वीकृति की मांग	6.56	6.62
3.	व्यवस्था की मांग	7.23	6.43
4.	प्रदर्शन की मांग	6.71	6.74
5.	स्वायत्तता की मांग	6.89	6.39
6.	सानिध्य की मांग	7.38	6.55
7.	परिहार की मांग	5.96	6.37
8.	पराश्रय की मांग	6.72	7.84
9.	प्रभुत्व की मांग	6.57	6.11
10.	आत्महीनता की मांग	5.81	7.60
11.	परोपकार की मांग	6.80	6.82
12.	प्रतिक्रिया की मांग	6.50	7.46
13.	सहनशीलता की मांग	6.02	6.75
14.	वैभिन्नता की मांग	6.97	6.53
15.	आक्रामकता की मांग	6.82	6.13

विद्याथियों में इन मांगो का प्रतिशत प्राप्तांक मात्र 6.55, 6.43 व 5.66 हैं। वहीं उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्याथियों में आत्महीनता की मांग (=5.81) व परिहार की मांग (=2.95) सबसे कम प्रबल है, जबकि निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्याथियों में इन मांगों का प्रतिशत प्राप्तांक मात्र 7.60 व 6.37 है।

तालिका-1 में दिये गये परिणाम से यह भी स्पष्ट है कि निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्याथियों में पराश्रय की मांग (=7.84), आत्महीनता की मांग (=7.60) व प्रतिक्रिया की मांग (=7.46) सबसे अधिक प्रबल हैं जबकि उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्याथियों में इन मांगों का प्रतिशत प्राप्तांक मात्र 6.72, 5.81 व 6.50 हैं। वहीं निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्याथियों में सम्प्राप्ति की मांग (=5.66) सबसे कम प्रबल है।

परिकल्पना-1

प्रस्तुत शोध की प्रथम शून्य परिकल्पना ''उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों के व्यक्तित्व आवश्यकताओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता हैं।'' इसके परीक्षण के लिए प्रतिदर्श से चयनित उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों पर व्यक्तित्व आवश्यकता मापनी प्रशासित की गयी तथा टी-परीक्षण द्वारा विश्लेषण किया गया है। प्राप्त परिणाम तालिका-2 में दिये जा रहे हैं।

तालिका-2 में दिये गये परिणाम से स्पष्ट है कि उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों के व्यक्तित्व आवश्यकताओं में परिगणित टी का मान 3.88, 3.16 व 3.10 हैं, जो 0.01 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित सारणीमान (=2.71) से अधिक हैं अत: 0.01 स्तर पर यह सार्थक हैं। वहीं परिगणित टी का मान 2.26, 2.24 व 2.42 हैं, जो 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित सारणीमान (=2.02) से अधिक हैं, अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है की उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों में सम्प्राप्ति की मांग (=3.88), स्वायत्तता की मांग (=3.16), परिहार की मांग (=2.26), प्रभुत्व की मांग (=2.24), आत्महीनता की मांग (=3.10) तथा सहनशीलता की मांग (=2.42) में अन्तर पाया गया है।

निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों का मध्यमान (=13.81 व 14.5) उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों के मध्यमान (=12 व 12.90) से अधिक हैं, अत:

तालिका-2

उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों के व्यक्तित्व आवश्यकताओं में अन्तर को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन व टी अनुपात

क्र. स.	व्यक्तित्व मांग	उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्र		निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्र		टी अनुपात
		मध्यमान	मानक-विचलन	मध्यमान	मानक-विचलन	
1.	सम्प्राप्ति की मांग	14.63	1.69	11.95	2.68	3.88**
2.	स्वीकृति की मांग	13.77	2.53	13.81	1.87	0.05
3.	व्यवस्था की मांग	14.5	2.53	14.68	1.57	0.28
4.	प्रदर्शन की मांग	13.90	2.50	14.5	2.5	0.77
5.	स्वायत्तता की मांग	15.22	2.72	12.72	2.39	3.16**
6.	सानिध्य की मांग	14.40	3.14	14.72	2.15	0.38
7.	परिहार की मांग	12	2.79	13.81	2.38	2.26*
8.	पराश्रय की मांग	14.5	4.16	15.18	2.80	0.62
9.	प्रभुत्व की मांग	13.86	2.84	11.95	2.68	2.24*
10.	आत्महीनता की मांग	12.95	2.24	15	2.08	3.10**
11.	परोपकार की मांग	14.04	3.22	14.18	3.51	0.13
12.	परिवर्तन की मांग	13.04	2.49	14.18	2.08	1.62
13.	सहनशीलता की मांग	12.90	2.33	14.5	1.94	2.42*
14.	वैभिन्नता की मांग	14.54	4.31	13.86	3.52	0.56
15.	आक्रामकता की मांग	13.86	3.22	13.04	2.01	1.09

**/ ** सार्थकता स्तर .05/.01*

यह कहा जा सकता है कि निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों की तुलना में उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्र कम परिहार की मांग व सहनशीलता की मांग का अनुभव करते हैं। वहीं उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों का मध्यमान

(=14.63, 15.22, 13.86 व 15), निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों के मध्यमान (=11.95, 12.72 11.95 व 12.95) से अधिक है, अत: यह कहा जा सकता है कि उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों की तुलना में निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्र कम सम्प्राप्ति की मांग, स्वायत्तता की मांग, प्रभुत्व की मांग व आत्महीनता की मांग का अनुभव करते हैं।

वहीं परिगणित टी का मान (=0.05, 0.28, 0.77, 0.38, 0.62, 0.13, 1.62, 0. 56 व 1.09) 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित सारणीमान (=2.02) से कम है, अत: 0.05 स्तर यह सार्थक नही हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्र स्वीकृति की मांग, व्यवस्था की मांग, प्रदर्शन की मांग, सानिध्य की मांग, पराश्रय की मांग, परोपकार की मांग, परिवर्तन की मांग, वैभिन्नता की मांग व आक्रामकता की मांग को समान रूप से अनुभव करते हैं।

परिकल्पना-2

प्रस्तुत शोध की द्वितीय शून्य परिकल्पना ''उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधि ार छात्राओं की व्यक्तित्व आवश्यकताओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता हैं।'' इसके परीक्षण के लिए प्रतिदर्श से चयनित उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं पर व्यक्तित्व आवश्यकता मापनी प्रशासित की गयी तथा टी-परीक्षण द्वारा विश्लेषण किया गया हैं। प्राप्त परिणाम तालिका -3 में दिये जा रहे हैं।

तालिका-3 में दिये गये परिणाम से स्पष्ट है कि उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं की व्यक्तित्व आवश्यकताओं में परिगणित टी का मान 2.77 है, जो 0.01 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित सारणीमान (=2.71) से अधिक है, अत: 0.01 स्तर पर यह सार्थक हं। वहीं परिगणित टी का मान 2.25, 2.5, 2.34 व 2.10 हैं, जो 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित सारणीमान (=2.02) से अधिक हैं, अत: 0.05 स्तर पर यह सार्थक हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं में सम्प्राप्ति की मांग (=2.55), व्यवस्था की मांग (=2.25), सानिध्य की मांग (=2.5), पराश्रय की मांग (=2.34) तथा आत्महीनता की मांग (=2. 10) में अन्तर पाया गया है।

निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं का मध्यमान (=17.9 व 17.05)

तालिका-3

उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं की व्यक्तित्व आवश्यकताओं में अन्तर को दर्शाते हुए मध्यमान, मानक विचलन व टी अनुपात

क्र. स.	व्यक्तित्व मांग	उच्च आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राएं		निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राएं		टी अनुपात
		मध्यमान	मानक-विचलन	मध्यमान	मानक-विचलन	
1.	सम्प्राप्ति की मांग	15.05	2.78	12.25	3.46	2.77**
2.	स्वीकृति की मांग	13.8	3.45	14	2.88	0.19
3.	व्यवस्था की मांग	15.95	5.75	12.25	4.32	2.25*
4.	प्रदर्शन की मांग	14.3	3.16	13.9	2.23	0.45
5.	स्वायत्तता की मांग	13.65	2.98	14.2	3.38	0.53
6.	सानिध्य की मांग	16.7	6.01	12.7	3.56	2.5*
7.	परिहार की मांग	13.1	3.26	12.9	2.25	0.22
8.	पराश्रय की मांग	13.7	5.01	17.9	6.02	2.34*
9.	प्रभुत्व की मांग	13.75	2.54	13.8	2.33	0.06
10.	आत्महीनता की मांग	13.7	4.01	17.05	5.66	2.10*
11.	परोपकार की मांग	14.55	2.78	14.5	2.95	0.05
12.	परिवर्तन की मांग	14.35	3.94	14.6	2.37	0.23
13.	सहनशीलता की मांग	12.35	2.88	13.85	1.85	1.92
14.	वैभिन्नता की मांग	14.75	3.06	13.55	3.24	1.17
15.	आक्रामकता की मांग	14.85	3.16	14.95	1.82	0.12

**/ ** सार्थकता स्तर .05/.01*

उच्च आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं के मध्यमान (=13.7 व 13.7) से अधिक हैं, अत: यह कहा जा सकता है कि निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं की

तुलना में उच्च आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राएँ कम पराश्रय की मांग व आत्महीनता की मांग का अनुभव करती हैं। वहीं उच्च आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं का मध्यमान (=15.05, 15.05 व 16.7), निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं के मध्यमान (=12.25, 12.25 व 12.7) से अधिक हैं, अत: यह कहा जा सकता है कि उच्च आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं की तुलना में निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राएं कम सम्प्राप्ति की मांग, व्यवस्था की मांग व सानिध्य की मांग का अनुभव करती हैं।

वहीं परिगणित टी का मान (=0.19, 0.45, 0.53, 0.22, 0.06, 0.05, 0.223, 1.92, 1.17 व 0.12) 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु अपेक्षित सारणीमान (=2.02) से कम हैं, अत: 0.05 स्तर यह सार्थक नहीं हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राएं स्वीकृति की मांग, प्रदर्शन की मांग, स्वायत्तता की मांग, परिहार की मांग, प्रभुत्व की मांग, आत्महीनता की मांग, परोपकार की मांग, परिवर्तन की मांग, सहनशीलता की मांग, वैभिन्नता की मांग व आक्रमकता की मांग को समान रूप से अनुभव करती हैं।

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष

1. उच्च आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्यार्थियों में सानिध्य की मांग, व्यवस्था की मांग, व सम्प्राप्ति की मांग सबसे अधिक प्रबल पाई गई, जबकि आत्महीनता की मांग व परिहार की मांग सबसे कम प्रबल पाई गई।
2. निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर विद्यार्थियों में पराश्रय की मांग, आत्महीनता की मांग व प्रतिक्रिया की मांग सबसे अधिक प्रबल पाई गई, जबकि सम्प्राप्ति की मांग सबसे कम प्रबल है।
3. उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों की व्यक्तित्व आवश्यकता में सम्प्राप्ति, स्वायत्तता, परिहार, प्रभुत्व, आत्महीनता तथा सहनशीलता की मांग में सार्थक अन्तर पाया गया।
4. उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाले मूक-बधिर छात्रों व्यक्तित्व आवश्यकता में स्वीकृति, व्यवस्था, प्रदर्शन, सानिध्य, पराश्रय, परोपकार, परिवर्तन, वैभिन्नता व आक्रामकता की मांग को समान रूप से अनुभव करते हैं।

5. उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं की व्यक्तित्व आवश्यकता में सम्प्राप्ति, व्यवस्था, सानिध्य, पराश्रय तथा आत्महीनता की मांग में अन्तर पाया गया।

6. उच्च व निम्न आकांक्षा-स्तर वाली मूक-बधिर छात्राओं की व्यक्तित्व आवश्यकता में स्वीकृति, प्रदर्शन, स्वायत्तता, परिहार, प्रभुत्व, आत्महीनता, परोपकार, परिवर्तन, सहनशीलता, वैभिन्नता व आक्रामकता की मांग को समान रूप से अनुभव करती हैं।

शिक्षा प्रक्रिया में विद्यार्थी एक महत्त्वपूर्ण कारक हैं। विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए किसी कार्यक्रम, वस्तु, व्यक्ति आदि से संतुष्टि अथवा असंतुष्टि का अनुभव करना काफी सीमा तक बालक के अपने व्यक्तित्व मांग पर निर्भर करता है। व्यक्तित्व मांग के आधार पर ही बालक अपने आकांक्षा या महत्त्वाकांक्षा को निर्धरित करता हैं। इसका सम्बन्ध जीवन के कार्यों से होता है। एक ही प्रकार के जीवन ध्येय बालक में विभिन्न आकांक्षा स्तर को विकसित कर सकते हैं। एक व्यक्ति का जीवन ध्येय काफी ऊँचा है तो वह उसके लिए अत्यन्त अध्ययन करेगा, परन्तु दूसरा जिसका ध्येय निम्न है वो थोड़ा ही सीखने पर सन्तुष्ट हो जाएगा। विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु उसके जीवन लक्ष्यों के निर्धारण मार्ग में शिक्षको तथा परिवारजन्यों द्वारा उनकी उन वांछनीय मांगों को प्रोत्साहित करना होगा जो कि उनके उच्च जीवन ध्येय को निर्धारित करने में सहयोगी हैं तथा वे अवांछनीय मांगें जो विद्यार्थियों में असफलता, असंतोष व कुण्ठा लाती हैं, उनको हतोत्साहित करना होगा। यदि शिक्षकगण, अभिभावकगण, प्रशासक वर्ग, शैक्षिक परामर्शदाता आदि बालक की इन मांगों व जीवन ध्येय को दृष्टिगत रखकर विकलांग विद्यार्थियों को परामर्श देंगे, मार्ग-निर्देशन करेंगे व आवश्यक शैक्षिक वातावरण व अधिगम परिस्थियां उपलब्ध करायेगें तो ये विद्यार्थी अधिक से अधिक उन्नति कर पाएंगे।

संदर्भ

भार्गव, एम. एण्ड धीर, पी. (1980); ''ए कम्परेटिव एक्जामिनेशन ऑफ नीड पैटर्न्स ऑफ एसपिरेन्ट गर्ल्स विथ इन रियलेस्टिक एण्ड नॉन रियलेस्टिक जोन्स'' पर्सपेक्टिव्स् इन साइकोलॉजिकल रिसर्चेज, 3(1), 25-28

भाटिया, इरा (1980); ए स्टडी आफ एन-एचीवमेन्ट अमंग इंडिया यूथ ऑफ डिफरेन्ट सोशियो-इकोनॉमिक स्टेट्स स्पेशली विथ रिफरेन्श टू देयर एकेडमिक एण्ड वोकेशनल लाइफ. पीएच. डी. थीसिस इन साइकोलॉजी, आगरा यूनिवर्सिटी

गुप्ता, अंजलि (1980); ए कोरिलेशनल स्टडी ऑफ लेवेल ऑफ एसपिरेशन एण्ड पर्सनॉलिटी एडजेस्टमेन्ट ऑफ अन्डरग्रेजुएट्स ऑफ मुरादाबाद. एम.एड. डिजर्टेशन, रूहेलखण्ड यूनिवर्सिटी, बरेली

सिंह, रश्मि (1997); विकलांग बालको की आकांक्षा स्तर और शैक्षिक निष्पत्ति का अध्ययन. अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध, शिक्षाशास्त्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हीवर्ड, डब्लू. एल. (1996); एक्सेप्शनल चिल्ड्रेन: एन इन्ट्रोडक्शन टू स्पेशल एजुकेशन, न्यू जर्सी: प्रिन्टिस हॉल

मुर्रे, एच.ए. (1938); एक्सप्लोरेशन इन पर्सनालिटी, न्यूयार्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 142-242

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 17, अंक 3, दिसंबर 2010

शोध टिप्पणी/संवाद

माध्यमिक स्कूल स्तर पर सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में अग्रिम संगठक प्रतिमान की प्रभाविकता

रमेश धर द्विवेदी* और **प्रतिमा मिश्रा****

शिक्षण शैक्षिक प्रक्रिया की एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है। यह एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें शिक्षक छात्र-व्यवहार को प्रभावित करता है एवं उसे समाज की आवश्यकताओं एवं आदर्शों के अनुरूप तैयार करता है। शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक अधिगम परिस्थितियों को निर्मित एवं व्यवस्थित करता है। अत: शिक्षक को शिक्षण विधियों की सामान्य समझ होनी चाहिए, जिससे वह विषयवस्तु को छात्रों के सम्मुख प्रभावी ढंग से प्रेषित कर सके।

शिक्षण एवं अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन साहित्य में मिलता है, जिसे शिक्षाशास्त्री शिक्षण प्रतिमानों के रूप में परिवर्तित करते हैं। शिक्षण प्रतिमान शिक्षण सिद्धान्तों के सर्वोच्च स्थानापन्न हैं। यह संकेत करता है कि किस प्रकार अधिगम तथा शिक्षण की दशाएं परस्पर सम्बन्धित हैं (डिसिको एवं क्राफोर्ड, 1977)। शिक्षण प्रतिमान को अनुदेशन की रूपरेखा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत उद्देश्य प्राप्ति के लिए विशिष्ट पर्यावरण एवं परिस्थितियों की व्यवस्था इस प्रकार होती है ताकि छात्र और शिक्षकों की पारस्परिक क्रिया द्वारा छात्रों में वांछित परिवर्तन लाया जा सके (ज्वायस एवं बील, 1972)।

हम सूचना क्रान्ति के दौर में रह रहे हैं, जहां हमारा छात्र नित्य नवीन तथ्यों एवं सम्प्रत्ययों के समुद्र में गोता लगा रहा है। अध्यापक इन तथ्यों एवं सम्प्रत्ययों के शिक्षण में कठिनाई का अनुभव कर रहा है कि कैसे इन तथ्यों एवं सम्प्रत्ययों को छात्रों के सम्मुख

* शिक्षा विभाग, उदय प्रताप स्वायत्तशासी कालेज, वाराणसी (उ.प्र.)
** शिक्षा विभाग, सी.आर.डी. (पी.जी.) कालेज, गोरखपुर (उ.प्र.)

प्रभावी रूप से प्रस्तुत करे। ऐसे में सूचना संसाधन परिवार के अन्तर्गत आने वाले प्रतिमान महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

'ज्वायस और वील' ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि यह व्यक्ति को वातावरण से सूचनाओं को प्राप्त करने, उसे व्यवस्थित करने, समस्या को अनुभूत करने और समस्या का समाधान करने की राह दिखाता है।

'ज्वायस और वील' ने सूचना संसाधन परिवार के अन्तर्गत सात प्रतिमानों को रखा है। इसमें से कुछ प्रतिमान व्यक्ति की तार्किक शक्ति एवं आगमनात्मक मानसिक शक्ति का विकास करते हैं। जैसे हिल्डा टाबा का आगमनात्मक चिन्तन प्रतिमान और सचमैन का परिपृच्छा प्रशिक्षण प्रतिमान। कुछ प्रतिमान समप्रत्ययों के ज्ञान एवं धारण से जुड़ा है। जैसे- ब्रूनर का सम्प्रत्यय सम्प्राप्ति प्रतिमान और आशुबेल का अग्रिम संगठक प्रतिमान।

शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य तथ्यों एवं सूचनाओं का ज्ञान प्रदान करता है और सामाजिक विज्ञान विशेष रूप से इतिहास सूचनाओं एवं तथ्यों से भरा पड़ा है। अत: सूचना संसाधन परिवार के प्रतिमान इस विषय को पढ़ाने में अति उपयोगी होंगे। डेविड आशुबेल के अर्थपूर्ण अधिगम के सिद्धान्त पर आधारित प्रतिमान अग्रिम संगठक प्रतिमान सूचनाओं को अर्थपूर्ण एवं प्रभावी ढंग से संप्रेषित करने में शिक्षक को महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करता है। अग्रिम संगठक प्रतिमान छात्रों के संज्ञानात्मक ढांचे को मजबूत बनाता है। अमेरिका में आशुबेल एवं अन्य के द्वारा किये गये विभिन्न अध्ययनों ने सामाजिक विषय के शिक्षण में इस प्रतिमान की सर्वोच्चता स्थापित की है। किन्तु भारत में अभी इस विषय पर कम शोध हुए हैं। दूबे, प्रीति (2004) ने माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान के शिक्षण में विभिन्न शिक्षण व्यूहों की प्रभावकता ज्ञात करने का प्रयास किया। पाण्डेय, एस0एन0 (1986) ने कक्षा-8 में सामाजिक विज्ञान के शिक्षण में अग्रिम संगठक प्रतिमान और सम्प्रत्यय सम्प्राप्ति प्रतिमान के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन किया। जबकि श्रीवास्तव, रेखा (2002) ने डिग्री स्तर पर सामाजिक विज्ञान (समाजशास्त्र एवं शिक्षाशास्त्र) के शिक्षण में अग्रिम संगठक प्रतिमान की प्रभावकता का अध्ययन किया। परन्तु इतिहास विषय के शिक्षण में इस प्रतिमान की प्रभावकता पर कोई शोध कार्य उपलब्ध नहीं है। अत: शोधकर्त्री की यह सहज इच्छा हुई कि वह इतिहास विषय के शिक्षण में इस प्रतिमान की प्रभावकता का अध्ययन करे और पारम्परिक शिक्षण विधि के साथ इसकी तुलना करे।

समस्या कथन : प्रस्तुत शोध समस्या को निम्न रूप में कहा जा सकता है– ''माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विषय के शिक्षण में अग्रिम संगठक प्रतिमान की प्रभावकता।''

पदों की कार्यकारी परिभाषा :

माध्यमिक स्तर– माध्यमिक स्तर के छात्रों से तात्पर्य उन छात्रों से है, जो देश भर में लागू 10+2+3 पद्धति में नवीं एवं दसवीं कक्षा में पढ़ते हों। वर्तमान शोध कार्य हेतु इसमें मात्र माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश के दसवीं कक्षा के छात्र लिये गये हैं।

अग्रिम संगठक प्रतिमान : इस प्रतिमान को आशुबेल के अर्थपूर्ण वाचिक अधिगम के सिद्धान्त के आधार पर ब्रूस ज्वायस एवं मार्श वील ने तैयार किया। इस शिक्षण प्रतिमान की संरचना ज्वायस एवं वील की पुस्तक 'माडल्स ऑफ टीचिंग' (Models of Teaching) में वर्णित है।

प्रभावकता : प्रभवकता से तात्पर्य अग्रिम संगठक प्रतिमान एवं पारम्परिक विधि का माध यमिक स्तर के छात्रों के सामाजिक विज्ञान में उपलब्धि एवं धारण क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव से है।

शोध कार्य के उद्देश्य : इस शोध कार्य के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :

1. सामाजिक विज्ञान के चुने हुए प्रकरणों पर अग्रिम संगठक प्रतिमान एवं पारम्परिक विधि से पाठ योजना तैयार करना।
2. अग्रिम संगठक प्रतिमान एवं पारम्परिक विधि के अनुदेशन प्रभाव को तात्कालिक परीक्षण द्वारा ज्ञात करना।
3. अनुदेशन के तत्काल बाद अग्रिम संगठक प्रतिमान एवं पारम्परिक शिक्षण विधि के सापेक्षिक प्रभाव को ज्ञात करना।
4. अनुदेशन के 15 दिनों पश्चात अग्रिम संगठक प्रतिमान एवं पारम्परिक शिक्षण विधि द्वारा दिये गये अनुदेशन के प्रभाव को, छात्रों में अधिगम के धारण क्षमता के सम्बन्ध में ज्ञात करना।
5. अग्रिम संगठक प्रतिमान एवं पारम्परिक विधि द्वारा दिये गये अनुदेान के सापेक्षिक प्रभाव को छात्र अधिगम के धारण क्षमता के सम्बध में ज्ञात करना। छात्र अधिगम के धारण क्षमता का मापन अनुदेान के 15 दिनों के पश्चात की गयी।

परिकल्पना :

उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निम्न परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया :

1. पूर्व परीक्षण स्तर पर दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर न होना।
2. पश्च परीक्षण में दोनों समूहों के उपलब्धि प्राप्तांकों के मध्यमान में सार्थक अन्तर न होना।
3. अग्रिम संगठक प्रतिमान एवं पारम्परिक शिक्षण विधि द्वारा पढ़ाये गये छात्रों के पूर्व एवं पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के मध्यमान में सार्थक अन्तर नहीं है।
4. दोनों समूहों के अर्जित अंकों के मध्यमान में सार्थक अन्तर नहीं है।
5. अग्रिम संगठन प्रतिमान एवं पारम्परिक विधि द्वरा पढ़ाये गये छात्रों के धारण अंकों के मध्यमान में सार्थक अन्तर न होना।

शोध अभिकल्प :

इस शोध अध्ययन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के बेस्ट (1983, पृष्ठ–70) द्वारा सुझाये गये पूर्व–पश्च समान समूह परीक्षण अभिकल्प को कुछ संशोधन के साथ अपनाया गया। इस अभिकल्प का प्रारूप इस प्रकार है :

$$\begin{array}{llllll} R & O_1 & x & O_2 & \rightarrow & O_5 \\ \hline R & O_3 & C & O_4 & \rightarrow & O_6 \end{array}$$

जहाँ,

O_1–O_3 = पूर्व परीक्षण प्राप्तांक

O_2–04 = पश्च परीक्षण प्राप्तांक

O_5–O_6 = धारण परीक्षण प्राप्तांक

R = यादृच्छीकरण

X = प्रयोगात्मक चर

C = नियंत्रित चर

& = दोनों समूहों के मध्य यह रेखा समूह की समानता को दर्शाता है।

→ = 15 दिन के अन्तराल को दर्शाता है।

चर : इस शोध अध्ययन के लिए अग्रिम संगठन प्रतिमान एवं पारम्परिक विधि द्वारा शिक्षण मुख्य स्वतन्त्र चर है। शोधकर्ताओं द्वारा इतिहास विषय में तैयार उपलब्धि परीक्षण पर छात्रों के प्राप्तांक आश्रित चर हैं। दूसरा आश्रित चर अधिगम का धारण स्तर है, जो

शिक्षण के 15 दिन पश्चात मापी गयी। बुद्धि, लिंग, क्षेत्र आदि वाह्य चर थे, जिन्हें यादृच्छीकरण द्वारा नियंत्रित किया गया।

समष्टि एवं प्रतिदर्श : प्रस्तुत शोध अध्ययन माध्यमिक स्तर के छात्रों के ऊपर किया गया। यहां माध्यमिक स्तर के छात्र से तात्पर्य माध्यमिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश के कक्षा नौ एवं दस के छात्र/छात्राएं। अध्ययन हेतु आवश्यक प्रतिदर्श हेतु गोरखपुर शहर के विभिन्न विद्यालयों के छात्रों को यादृच्छिक रूप से चुना गया। इस अन्वेषण के लिए गोरखपुर शहर के एक इण्टरमीडिएट कालेज के कक्षा दस के छात्रों के दो अनुभाग बनाये गये। दोनों अनुभाग आयु, लिंग, निवास स्थान एवं उपलब्धि स्तर पर समान थे। प्रत्येक अनुभाग हेतु अन्तिम रूप से 40 छात्रों को चुना गया, जिन्होंने इस पूरी प्रक्रिया में हिस्सा लिया।

प्रदत्त संकलन : प्रस्तुत अध्ययन एक प्रयोगात्मक अनुसंधान है, जिसमें दो विभिन्न कार्यनीतियों से पढ़ाये गये छात्रों के अनुदेशन प्रभाव की तुलना उनके उपलब्धि के आधार पर की जानी थी। इस हेतु इतिहास विषय के चयनित इकाइयों पर निर्मित एक उपलब्धि परीक्षण की आवश्यकता थी। इस तरह के उपलब्धि परीक्षण के उपलब्ध न होने के कारण इसे स्वयं निर्मित किया गया। पाठ को प्रभावी रीति से पढ़ाने के लिए अग्रिम संगठक प्रतिमान एवं परम्परागत विधि पर आधारित पाठ योजनाओं की आवश्यकता थी। इस प्रकार के 16 पाठ योजना का स्वयं निर्माण किया गया। तत्पश्चात् प्रयोग आरम्भ किया गया।

समूहों को प्रयोग हेतु चयनित यादृच्छिक विधि से समूहों को प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित समूह में विभक्त किया गया। सर्वप्रथम दोनों समूहों पर उपलब्धि परीक्षण को प्रशासित किया गया एवं उनके प्राप्तांक ज्ञात किये गये। उपलब्धि अंकों के आधार पर दोनों समूहों में समानता स्थापित की गयी। अब दोनों समूहों को पूर्व निर्धारित तरीके से पढ़ाया गया। शिक्षण कार्य समाप्त होने के पश्चात् दोनों समूहों की उपलब्धि ज्ञात की गयी। पूर्व परीक्षण एवं पश्च परीक्षण के अन्तर को अर्जित अंक के रूप में प्राप्त किया गया। छात्रों द्वारा सीखी गयी सामग्री के धारण स्तर को ज्ञात करने के लिए 15 दिनों के पश्चात् पुनः एक बार उपलब्धि परीक्षण को प्रशासित किया गया। धारणा प्राप्तांकों को पूर्व परीक्षण अंकों से घटाकर धारण अंक ज्ञात किये गये।

परिणाम : दोनों समूहों द्वारा प्राप्त प्रदत्तों का सारांश सांख्यिकीय रूप में तालिका–1 में प्रस्तुत है।

तालिका-1

स्तर	प्रयोगात्मक समूह		नियंत्रित समूह	
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचल
पूर्व परीक्षण	8.10	3.16	7.95	3.01
पश्च परीक्षण	35.63	6.10	31.33	3.82
धारणा परीक्षण	31.60	5.51	27.15	3.95
अर्जित अंक	27.68	4.04	23.68	2.34
धारणा अंक	23.65	3.68	19.20	2.30

उपचार की प्रभावकता ज्ञात करने के लिए दोनों समूहों के उपलब्धि अंकों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। दोनों समूहों के विभिन्न स्तर पर प्राप्त क्रान्तिक अनुपात मूल्य को सारांश रूप में तालिका-2 में दर्शाया गया है।

तालिका-2

	समूह	स्तर	क्रान्तिक अनुपात मूल्य	सार्थकता स्तर सार्थक नहीं
1.	AOM-CM	पूर्व परीक्षण	0.217	0.01
2.	AOM-CM	पश्च परीक्षण	3.770	0.01
3.	AOM	पूर्व-पश्च	43.02	0.01
4.	CM	पूर्व-पश्च	63.20	0.01
5.	AOM-CM	अर्जित अंक	5.81	0.01
6.	AOM-CM	धारण अंक	6.53	0.01

उपरोक्त परिणामों के आधार पर पहली परिकल्पना कि दोनों समूहों के मध्य कोई अन्तर नहीं है, को सत्य पाया गया। इतिहास विषय में लिये गये प्रथम उपलब्धि परीक्षण के अंकों के आधार पर दोनों समूह समान पाये गये। शिक्षण पश्चात किये गये अन्य परीक्षणों का क्रान्तिक अनुपात मूल्य दोनों समूहों के मध्य अन्तर की सार्थकता को सिद्ध करना है। इतिहास विषय में छात्रों की उपलब्धि पर अग्रिम संगठक प्रतिमान (AOM) का सकारात्मक प्रभाव दिखता है। इसी प्रकार अर्जित अंक (Gain Score) और धारण अंक (retension) की तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि अग्रिम संगठक प्रतिमान (AOM)

द्वारा पढ़ाये गये छात्रों की धारण शक्ति परम्परागत विधि से पढ़ाये गये छात्रों से उच्च है। अत: अन्य परिकल्पनायें, जिसमें शिक्षण पश्चात दोनों समूहों के उपलब्धि एवं धारण स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, को विश्वास के 0.01 स्तर पर निरस्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष :

इस शोध अध्ययन के निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए :

1. माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में अग्रिम संगठक प्रतिमान एवं परम्परागत शिक्षण विधि दोनों ही उपयुक्त हैं।
2. माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में अग्रिम संगठक प्रतिमान एवं परम्परागत शिक्षण विधि दोनों ही प्रभावी है।
3. माध्यमिक स्तर पर अग्रिम संगठक प्रतिमान परम्परागत शिक्षण विधि से ज्यादा प्रभावी पाया गया।
4. छात्रों के अधिगम सामग्री के धारण में अग्रिम संगठक प्रतिमान परम्परागत शिक्षण विधि से प्रभावी पाया गया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अग्रिम संगठक प्रतिमान सामाजिक विज्ञान के शिक्षण में ज्यादा प्रभावी है और यह छात्रों द्वारा सीखी गयी सामग्री के धारण स्तर को भी प्रभावित करता है।

शैक्षिक निहितार्थ–

प्रस्तुत अध्ययन अनुदेशन तकनीकी के क्षेत्र से जुड़ा है। इस शोध का सबसे बेहतर निहितार्थ इस अध्ययन में प्रयुक्त प्रतिमान की अनुकूलनशीलता से है। इस शोध में प्रयुक्त शिक्षण विधाओं का अध्ययन एक छोटे प्रतिदर्श के ऊपर किया गया है। माध्यमिक स्तर के सामाजिक विज्ञान के सिर्फ आठ अध्यायों को अग्रिम संगठक प्रतिमान द्वारा पढ़ाया गया है। शिक्षण प्रणाली की सीमाएँ एवं कुछ चरों का नियंत्रण इसके अनुप्रयोग को प्रतिबन्धित करता है। इस अध्ययन के शैक्षिक निहितार्थ निम्नलिखत हो सकते हैं :

अ. शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में :

इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष यह स्पष्ट करता है कि यह शिक्षण प्रतिमान सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में उपयोगी है। बी.एड. स्तर पर अभ्यास शिक्षण के दौरान सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में हरबार्ट विधि के साथ-साथ अग्रिम संगठक प्रतिमान का प्रयोग किया जाय। बी.एड. स्तर पर कुछ विश्वविद्यालय इसे अपने पाठ्यक्रम में शामिल करने का प्रयास कर रहे हैं। एम.एड. स्तर पर इसे एक आवश्यक तत्व मानकर सैद्धान्तिक प्रश्न पत्र में शामिल किया है, लेकिन इसके प्रयोगात्मक पक्ष को अभी उसके अनुकूल तैयार

नहीं किया गया। यह छात्राध्यापकों के लिए आवश्यक है कि वे इस प्रतिमान एवं अन्य सुझाये गये प्रतिमानों का अभ्यास करें एवं उसे शिक्षण में प्रयोग करें।

ब. सेवारत शिक्षकों के लिए :

यह पूर्व में ही इंगित किया जा चुका है कि शिक्षक अपने शिक्षण के दौरान किसी एक विधि का प्रयोग नहीं करता, बल्कि विभिन्न विधियों को समन्वित रूप में प्रयुक्त करता है। अत: छात्रों के लिए कक्षा का वातावरण नीरस एवं उबाऊ हो जाता है। उच्च मानसिक क्रियाओं यथा, संश्लेषण, विश्लेषण आदि का प्रयोग कम से कम होता है। सूचनाओं को छात्रों तक मात्र प्रतीक के रूप में सम्प्रेषित करते हैं, न कि स्पष्ट सम्प्रत्यय के रूप में। ऐसा इसलिए होता है कि अध्यापक अधिकांशत: अपने शिक्षण में पाठ्यपुस्तक के साथ व्याख्यान विधि का प्रयोग करता है जो वातावरण में शिक्षक एवं छात्र दोनों में एकसरता लाते हैं। ऐसे में नवीन शिक्षण प्रतिमानों का प्रयोग इन कमियों को दूर कर सकता है। अत: शैक्षिक प्रशासन, प्रशासकों, पाठ्यक्रम निर्माताओं एवं परीक्षण निकाय आदि को इन नवाचारों के प्रयोग हेतु आवश्यक दक्षता एवं क्षमता को विकसित करने की संस्तुति देनी चाहिए।

सन्दर्भ :

वेस्ट जॉन डब्ल्यू. एंड काहन जे.वी. (2006) रिसर्च इन एजुकेशन, नाइन्थ, पियर्सन प्रेन्टिस हाल, नई दिल्ली: डार्लिंग काइंडर्सली (इंडिया) प्रा.लि.

डेवे, जॉन (1916) डेमोक्रेसी इन एजूकेशन, एन.वाई.: मैकमिलन

दूबे, प्रीति (2004), इफैक्ट ऑफ टीचिंग स्ट्रैटेजीज आन कन्सुप्चुअल लर्निंग एंड रीटेंशन आफ सेकेण्डरी स्टूडेंट इन सोशियल साइंस, अनपब्लिश्ड् पी-एच.डी. थिसेस, यू.पी. कॉलेज, वाराणसी

गैरे, एच.ई. (1981), स्टेटिक्स इन साइकोलॉजी एंड एजुकेशन बम्बई : वकील इफैक्ट एंड सिमन लि.

जॉइस, बी.एम. वैल एंड बी. शावरर्स (1992), मॉड्ल्स आफ टीचिंग (चौथा एडिसन) नई दिल्ली प्रेन्टिस हाल आफ इंडिया प्रा. लि.

कलिंग, फ्रेड एन. (1983) फाउण्डेशन आफ विहेवियरल रिसर्च (द्वितीय संस्करण) नई दिल्ली: सुरजीत पब्लिकेशन्स

पांडे एस.एन. (1986), इफैक्टिवनैस आफ एडवांस आर्गेनाइजर एंड इंक्वायरी ट्रेनिंग मॉडल्स फार टीचिंग सोशल स्ट्डीज टू क्लास 8 स्टूडेंट्स पी-एच.डी. एजूकेशन बी.एच.यू. इन एफएसआरई, एनसीईआरटी

श्रीवास्तव, रेखा (2002), इफैक्टिवनैस आफ एडवांस आर्गेनाइजर मॉडल इन टीचिंग सोशल साइंसेस एट डिग्री लेवल, पी-एच.डी. थेसिस, डी.डी.यू. गोरखपुर यूनिवर्सिटी

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 17, अंक 3, दिसंबर 2010

शोध टिप्पणी/संवाद

विद्यालयी शिक्षा में अनुशासन के विविध आयाम

अखिल कुमार* और **मधु कुशवाहा****

सारांश

यह लेख औपचारिक विद्यालयी व्यवस्था में अनुशासन के विविध आयामों का वर्णन करता है। लेख में अनुशासन के पीछे के कारणों, मिथकों, सच्चाइयों व इसके उपकरणों के रूप में नकारात्मक उपायों के समावेशीकरण की चर्चा की गई है। लेख विद्यालयी शिक्षकों / शिक्षिकाओं द्वारा अनुशासन के नाम पर विद्यार्थी प्रताड़ना की सच्चाइयों की पड़ताल करता है। यह उस मानसिकता को भी उजागर करता है जो इसके बने रहने के मूल में है। इसके साथ ही यह भावी शिक्षकों / शिक्षिकाओं, नीति निर्माताओं तथा प्रशासकों को इससे बचने के उपाय भी सुझाता है।

नैतिकता के मानक और वक्त के तकाजे सत्तासीनों के मनमाफिक बदलते रहते हैं। सारे आचार-व्यवहार और वैचारिकी जो समाज की मूलभूत व्यवस्था को तय करते / करती हैं, सत्ता के बदलते ही अपने प्रतिमानों में बदलाव करने लगते / लगती हैं। फिर भी, हर सत्ता व समाज में एक बात बहुत ज्यादा सामान्य है जो सभी बदलावों में खुद को अक्षुण्ण रखती है, वो है सत्ता के ऊँचे पायदानों पर विराजित शक्तियों / व्यक्तियों / समूहों का निचले पायदान के समूहों पर दबावमूलक शासन जो अंततः निचलों की स्वतंत्रता हरण के रूप में सामने आता है। कक्षा में विद्यार्थी (बालक/बालिका) इसी निचले पायदान का सदस्य होता है।

छोटे बनाम बड़े और बड़ों का सम्मान

''बड़ों का सम्मान करो'' यह एक बहुत श्रेष्ठ मूल्य है। कम से कम माना तो यही जाता है (गुप्ता, 2010)। इस मूल्य में आये शब्दों की अगर आलोचनात्मक विवेचना करें तो बड़ों के कई अर्थ और व्याख्याएं हो सकती हैं और होती आई हैं। समाज व्यवस्था में यह

* शिक्षा संकाय (क), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय (क), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

'बड़ा' वह है जो तथाकथित उच्च जाति का है, वर्गीय समाज में 'बड़ा' वह है जिसकी जनांकिकी बहुसंख्यक है। आर्थिक समाज में बड़ा वह है जो किसी भी तरह से अर्जित बड़ी पूँजी का स्वामी है और यही समाज कर्मों के पदानुक्रम में सबसे बुनियादी कर्मगारों को सबसे निचले पायदान पर रखता हुआ ''बड़ा/बड़ों'' के रूप में प्राय: ईश्वरीय प्रवाचकों या व्याख्याकारों को प्रथम पायदान प्रदान करता है। उम्र, लिंग आदि आधारों पर भी यह इसी प्रकार है।

''सम्मान करना'' को लेकर बहस करें तो सर्वप्रथम यह देखना होगा कि 'सम्मान' की कितनी विमाएं (Dimensions) हो सकती हैं। यह शुद्ध रूप से स्पष्ट करना होगा कि 'सम्मान करने' में कौन से व्यवहार शामिल किये जायं और किनको अपमानजनक या सम्मान नहीं प्रदर्शित करने वाले व्यवहारों में शामिल किया जाय। फिर भी कुछ व्यवहार जिनको 'सम्मानसूचक' मान लिया जाता है, उनमें अभिवादन करना, आने पर खड़े हो जाना, न कहने तक नहीं बैठना, बिना अपनी बात कहे चुप रहकर सुनना, जिरह नहीं करना, बीच में नहीं बोलना, पैर छूना, हां में हां मिलाना, प्रतिवाद नहीं करना आदि को प्राय: व्यापक सामाजिक मान्यता मिली है।

अब कक्षा परिस्थिति में देखें तो यह 'बड़ा' शिक्षक है, मॉनीटर है, धनी घरों के विद्यार्थी हैं, शारीरिक दृष्टि से हृष्ट-पुष्ट विद्यार्थी हैं, ऊँची जाति के विद्यार्थी हैं और सहशिक्षा व्यवस्था में शायद छात्र हैं, छात्राएं नहीं। इस 'बड़ा' में यदि मानवतावादी नजरिये को जोड़ें तो संभावना बनेगी कि उदार व्यक्तित्व 'बड़ा' है। इसमें यदि अनुभवाश्रित नजरिये को जोड़ें तो संभावना ज्यादा अनुभव वाले व्यक्तित्व को बड़ा साबित करेगी और सबसे बढ़के यह बड़प्पन तब साबित होगा, जब व्यक्तित्व की उदारता और अनुभव व्यवहार में आये। खयाली उदारता और खुद तक सीमित अनुभव जिससे सामने वाले का किसी भी प्रकार का भला संभव नहीं, क्या बड़प्पन कहलाएगा? इसी तरह बड़प्पन को कर्मों के अनुरूप भी देखा जा सकता है।

कक्षा में विद्यार्थियों के शिक्षण/अनुदेशन में बड़प्पन वाले व्यवहार में उम्र, शारीरिक बनावट, शक्ति, जाति, वर्ग, लिंग आदि जनित बड़प्पन को स्वीकार किया जाय या व्यावहारिक अनुभव, उदारता, भागीदारीयुक्त जिम्मेदारी विचारणीय मुद्दा हो सकता है। कम से कम विद्यार्थी तो शिक्षकीय गुणों के दो विमाओं - शैक्षिक गुण व व्यावहारिक गुणों के रूप में क्रमश: अच्छे वर्णन व सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार को ही शीर्षस्थ स्थान प्रदान करते हैं (एन.सी.ई.आर.टी.,1962)। एक शोध में विद्यार्थियों के पूर्वघोषित अवांछित व्यवहारों पर नियंत्रण में शिक्षकों द्वारा धनात्मक उपायों का नहीं के बराबर प्रयोग होने की

बात सामने आयी। इस शोध में विद्यार्थियों के कुछ व्यवहारों जैसे शोर, अवांछित प्रश्न करना, शिक्षक व साधारण छात्रों पर मजाक आदि के लिए शिक्षकों की तरफ से धनात्मक से ज्यादा नकारात्मक उपायों खासकर घुड़की देना, डाँटना व शारीरिक दण्ड देने की सलाह सामने आयी (एन.सी.ई.आर.टी.,1962)। यह सब कक्षा को अनुशासित करने के उपकरण माने जाते हैं।

कक्षा अनुशासन बनाम कक्षा अनुपात

कक्षा-कक्ष परिस्थिति में शिक्षण मुख्यत: शिक्षक-छात्र अंतर्क्रियाओं के रूप में होता है। कम जानकार व्यक्तित्व की ओर अनुभवी तथा अधिक जानकार व्यक्तित्व ज्ञान रूपी सूचनाओं का संप्रेषण करता है। इस क्रिया में वह ज्ञान को विद्यार्थियों के मानसिक व सामाजिक धरातल तक उतारकर शिक्षण व सीखने को सफल बनाता है। यह सफलता प्रतिपुष्टि या मूल्यांकन प्रश्नों के द्वारा तत्काल मापी जानी चाहिए। अब एक कक्षा में सफल शिक्षण के लिए छात्र-शिक्षक अनुपात की बात सामने आती है कि 40 मिनट की एक कक्षा में शिक्षक अधिकतम कितने विद्यार्थियों, खासकर पूर्व किशोरावस्था के विद्यार्थियों को सफलतापूर्वक शिक्षित कर सकता है?

ज्ञात हो कि पूर्व किशोरावस्था के विद्यार्थियों में चंचलता व ध्यान विकेन्द्रण बहुत आम बात है। इसके कुछ तो शारीरिक व हार्मोनल कारण हैं, कुछ अन्य। शारीरिक व हार्मोनल कारणों को छोड़ दें, तो अन्य कारणों में विद्यार्थी आम महत्त्वाकांक्षा के कारण अपने अनुभवों को जल्द से जल्द बढ़ाकर बड़ों के स्तर तक लाना चाहता है। वह जल्द से जल्द सब कुछ जान लेने को उत्सुक रहता है। कक्षा में वह शिक्षण के अलावा अन्य छात्रों की गतिविधियों व कक्षा के बाहर की गतिविधियों पर समान रूप से चौकन्ना रहता है। उसके लिए शिक्षक के अतिरिक्त यह सब भी उद्दीपक का काम करते हैं। अत: शिक्षण कार्य में लगे अध्यापक/अध्यापिका का ध्यान जिस घटना की ओर नहीं जाता है, पूर्व किशोरावस्था के विद्यार्थियों का ध्यान शीघ्रता से उस घटना की ओर चला जाता है। यह घटना किसी अन्य विद्यार्थी की पेंसिल टूटने, गिरने, बटन टूटने, कक्ष के बाहर किसी के गुजरने आदि जैसी छोटी-मोटी घटना भी हो सकती है, जिनमें से संभवत: कोई भी शिक्षक/शिक्षिका का ध्यान आकृष्ट नहीं करा पायेंगी, किन्तु विद्यार्थी समुदाय का ध्यान उधर चला जाता है। अब अधिक विद्यार्थियों वाली कक्षा में ऐसी अदृश्यप्राय घटनाएँ होने की संभावना भी अधिक होगी, फलत: अपूर्ण अधिगम की संभावना बढ़ेगी जो मूल्यांकन प्रश्नों के उत्तर लेने में शिक्षक/शिक्षिका की झुंझलाहट बढ़ाएगी। यही नहीं अधिक विद्यार्थियों की कक्षा में उनकी तरफ से अधिक प्रश्नों व जिज्ञासाओं की अपेक्षा

की जाती है। अत: कोर्स पूरा करने की हड़बड़ी अध्यापक को छात्रों की जिज्ञासाओं को दबाने को बाध्य करेगी, जिसके लिए वह ऐसे वातावरण की निर्मिति करेगा, जिसमें विद्यार्थियों के जिज्ञासा प्रश्न न करने की संभावना कम से कम हो। ऐसा वातावरण प्राय: भयपूर्ण माहौल में ही मिलता है, जिसमें शिक्षक/शिक्षिका विद्यार्थियों को डाँटकर, टिप्पणी कर, दंडित कर, आँख दिखाकर, खिल्ली उड़ाकर शुरू में ही कक्षा के वातावरण को बोझील और डरावना कर देते/देती हैं। नतीजा अधिगम में 'चुप रहकर स्वीकृति में सर हिलाने' की प्रतिक्रिया हावी हो जाती है।

वास्तव में प्राइवेट ट्यूटर की आवश्यकता इसीलिए पड़ती है कि वे विद्यार्थियों के अधिगम रिक्ति की भरपाई कर सकें। यह अधिगम रिक्तता या तो विद्यार्थी के ध्यान विकेन्द्रण की उपज होती है या अध्यापकीय कौशल-कमी की। अध्यापकीय कुशलता में कमी विद्यार्थियों की अधिक संख्या के कारण भी संभव है, इसका ध्यान प्राय: नहीं रखा जाता है। कोठारी आयोग (1964-66) ने प्राथमिक, पूर्व माध्यमिक व माध्यमिक स्तर की कक्षाओं के लिए क्रमश: 50, 45 व 40 की संख्या के कक्षा आकार का सुझाव दिया था, जो अपने आपमें कम नहीं है (एन.सी.ई.आर.टी.,1970)। फिर भी, यदि इसे ही आदर्श मानते हुए हम शिक्षा-व्यवस्था की पड़ताल करें तो यह कक्षा आकार सार्वजनिक विद्यालयों में पूर्णत: प्रस्तावित नहीं दिखता है। अत: अधिक विद्यार्थी संख्या अधिक ध्यान की मांग करती है, जिसकी कमी में शिक्षक अनुशासन के नाम पर भयशासन का निर्माण करता है।

निजी बनाम सार्वजनिक विद्यालयों के विद्यार्थी

सरकारी सरोकार और संवैधानिक समाजवाद का आदर्श दुहरी शिक्षा व्यवस्था में मुंह की खा रहे हैं। चाचा नेहरू के बच्चे (बच्चियाँ) बँटकर निजी व सार्वजनिक विद्यालयों के बच्चे हो गए हैं। निजी स्कूलों में विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात का बढ़िया स्तर हर छात्र की वैयक्तिक विविधता के सम्मान के साथ अधिगम रिक्ति की भरपाई करने में काफी हद तक सक्षम है। निजी स्कूलों में विद्यार्थी विकास के प्रति अध्यापकीय जवाबदेही तथा पठन-पाठन में अत्यधिक डिवाइसेज, मनोवैज्ञानिक युक्तियों तथा यंत्रों का प्रयोग छात्रों/छात्राओं के अधिगम को पूर्ण करने में काफी हद तक सक्षम है। एक छोटा तंत्र व उसी के हाथों संचालित होने के कारण इन विद्यालयों की जवाबदेही उस तंत्र के प्रत्यक्ष नियंत्रण में होती है। जवाबदेही अध्यापकीय व्यवहार को सक्रिय करके उपयुक्त दिशा देती है जो अधिगम को पूर्ण करने में सहायक होती है।

इससे इतर सार्वजनिक या सरकारी विद्यालय एक बहुत बड़े तंत्र के हाथों संचालित होने के कारण व्यक्तिगत जवाबदेही से प्राय: बचे रहते हैं और फिर उन पर मैनेजमेंट की प्रत्यक्ष मॉनिटरिंग नहीं होने से जवाबदेही की कमी अंतत: उनकी भागीदारी की कमी के रूप में सामने आती है, जिससे विद्यार्थियों में अधिगम रिक्ति, पढ़ाई में उमंग की कमी व विचलन तथा समझमुक्त रटने की प्रवृत्ति/परंपरा पनपने लगती है। नंबरों का अनावश्यक दबाव तथा घर परिवार व सामाजिक पहचान की मांग उन्हें रटने को बाध्य करती है और जब बच्चा रटने की बजाय समझकर कम ही तैयार करने में रुचि दिखाता है तब कोर्स पूरा करने व सब पढ़ने के लिए (ताकि अधिक नंबर आ सकें) उस पर तमाम तरह के दबाव, प्रलोभन व दंडविधान लाद दिए जाते हैं।

कक्षा में आवाज बनाम अनुशासन

आवाज का अर्थ यदि शोर से हटकर लगाएं तो एक कक्षा में दो वर्गों की आवाजों को जगह दी जा सकती है। एक है शिक्षक/शिक्षिका की आवाज तथा दूसरी है विद्यार्थियों की तरफ से आवाज। समस्या यह है कि इन दोनों ध्वनि विन्यासों में किसका भारांक ज्यादा हो? यह पूरी समस्या शिक्षण विधि से गहराई में जुड़ी हुई है। प्राय: कक्षाओं में 40 मिनट का समय अध्यापकीय आवाज से ही समाप्त हो जाता है। यह एक स्थिति है। दूसरी स्थिति में अध्यापक (अध्यापिका) विद्यार्थियों को कुछ सवाल या प्रश्न हल करने को कहकर खुद चुपचाप प्राय: आराम फरमाने की मुद्रा में कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। अधिकांश ग्रामीण-सरकारी विद्यालयों में यही दो मुख्य पैटर्न हैं - कक्षा में आवाज होने या न होने के। दोनों में ही विद्यार्थियों की तरफ से आवाज आने की संभावना पूरी तरह खारिज रहती है और इस खारिजपन को अनुशासित कक्षा का अनुशासित वातावरण करार दे दिया जाता है। शोर, आपसी बातचीत और अध्यापक/अध्यापिका से प्रश्न करने को समान रूप से 'मिसकंडक्ट' और 'डिस्टर्विंग इवेंट' घोषित करके अनुशासनहीनता की श्रेणी में डालना शिक्षकों/शिक्षिकाओं का प्रिय श्रेणीकरण है। इस तरह से अधिगम के एक महत्वपूर्ण स्रोत बातचीत व प्रश्न पूछने को कक्षा में बिल्कुल भी सम्मानित जगह नहीं दिया जाता है *(कुमार, 2004)*।

वैयक्तिक विभेद बनाम निरपेक्ष अनुशासन

मनोविज्ञान में बड़ी महत्त्वपूर्ण अवधारणा है वैयक्तिक विभेद की, जिसका कुल जमा लब्बोलुआब यही है कि आप किन्हीं दो अलग-अलग व्यक्तियों को एक तराजू में रखकर नहीं देख सकते।

किसी भी प्रकार की युनिफार्मिटी व निरपेक्षता, चाहे वह अधिगम, व्यक्तित्व, बुद्धि, समान उद्दीपन-अनुक्रिया, समझ या अन्य किसी भी पक्ष से संबंधित हो, के प्रतिपूरक रूप में यह अकेला सिद्धान्त चुनौती है। यह चुनौती तब और बढ़ जाती है जब नीति निर्माता इसके ध्यान के बिना पूरे देश, राज्य, विद्यालय या कक्षा के लिए 'एकीकृत नीतियों' की घोषणा करते हैं। वैयक्तिक विभेद के मूल में जायं तो इसके विकास पर एक दृष्टि डालनी पड़ेगी। कम से कम इस संसार में जन्मने वाला प्रत्येक शिशु, यदि गुणसूत्रीय खामियों को छोड़ दें तो सामान्य प्रसव में समान होता है। अपनी निजी चेतना में वह धनी-गरीब, जाति-पांति, बोली-भाषा, क्षेत्र-समुदाय, स्त्री-पुरुष, रंग-वर्ग व अन्य सभी प्रकार के विभेदों से ऊपर होता है। संसार में आते ही वह इस विभेदकारी व्यवस्था में हर दूसरे से अलग हो जाता/जाती है। यह बंटवारा उसका खुद का चयन न होकर समाज द्वारा उस पर सायास लादा जाता है। फिर उसके माता-पिता, परिवार, समुदाय आदि का सानिध्य उसे हर दूसरे शिशु व्यक्तित्व से दूर करने लगता है। उसका अनुभव फलक तक पृथकतापूर्ण हो जाता है।

ऐसे में (पांच वर्ष की उम्र में) कक्षा में प्रवेश के समय कक्षा अपने आपमें एक कक्षा न होकर चालीस-पचास पृथक् पृष्ठभूमि, अनुभव-संसार, शारीरिक पोषण आदि के व्यक्तित्वों की कक्षा होती है। अब देखिए दुहरी नीति की बानगी कि शुरू में समान से व्यक्तित्वों को समाज व्यवस्था में अलगाया गया, फिर कक्षा में आने पर उनके लिए समान नीति लागू करने का प्रयास किया जाता है। सभी के लिए एक पाठ्यक्रम जिसमें उनका अपना घर-संसार व अनुभव परिदृश्य से गायब रहता है, समान अनुशासन व्यवस्था जिसमें अतिसक्रिय (हाइपरऐक्टिव डिसॉर्डर से ग्रसित), कम सक्रिय, स्लो-लर्नर व ध्यान विकेन्द्रण वाले विद्यार्थियों से समान व्यवहार व समान पूर्वज्ञान (जिसमें निरक्षरों व साक्षरों दोनों की संतानें रहती हैं) की अपेक्षा की जाती है। इसी तरह हर कोण से समानता की बात/अपेक्षा नीतियों में की जाती है, बिना इसका ध्यान रखे कि निजीपन व पृथकता भी इसी समाज ने जन्माए हैं।

अब एक कक्षा में शिक्षक लगभग चालीस तरह के व्यक्तित्वों से 40 मिनट में व्यवहार करता है। इस लिहाज से प्रतिविद्यार्थी समय भारांक एक मिनट ठहरता है जो दो तरह से खर्च किया जा सकता है - विद्यार्थियों की समस्या का निदान करके या कोर्स की समस्या का निदान (सिलेबस पूरा कराने से संबंधित) करके। दूसरे कार्य का दबाव शिक्षक जमात पर इतना ज्यादा रहता है कि पहले के लिए समय ही निकालना मुश्किल

हो जाता है, अत: छात्रों की व्यक्तिगत/विषयगत समस्या को कम करने के लिए प्रश्नों को बाधित करना शिक्षक जमात की मजबूरी बन जाती है, जिसके लिए कक्षा का भयपूर्ण वातावरण पूरी तरह मुफीद साबित होता है। इस भय का पोषण व निर्माण अनुशासन के नाम पर दंड व्यवस्था में पनाह पाकर कक्षा को अनुशासित बना देता है।

अनुशासित बच्चों/बच्चियों की परिभाषा

कक्षा–कक्ष परिस्थिति में अनुशासित वही है जो शिक्षक/शिक्षिका के मंतव्यों का पोषण करे। यह एक सातत्य या पदानुक्रम है जिसमें बच्चे का, जो अपनी विलक्षणता व अपूर्वता के साथ विद्यालय/कक्षा में आया है, अनुशासन व सामाजीकरण के नाम पर परतंत्रीकरण किया जाता है। अनुशासित हो जाने पर उसे अच्छा व आदर्श बालक करार देकर नजीर रूप में अन्य बच्चों/बच्चियों के सम्मुख वैसा बनने के लिए प्रस्तुत कर दिया जाता है।

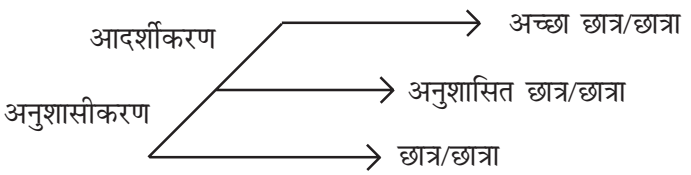

अनुशासन जब तक सकारात्मक रूप में बच्चों के व्यक्तित्व विकास के लिए है, तब तक ठीक है, परन्तु सामान्य तौर पर अनुशासनीकरण में दंडविधान के उपकरणों का भी समावेशीकरण कर लिया जाता है। समस्या की जड़ यहीं पर है कि शिक्षक व अभिभावक दण्ड व अनुशासन में अंतर नहीं कर पाते व दोनों को एक ही समझते हैं। बच्चे, वो भी छोटे बच्चे/बच्चियां बहुत ही कमजोर जमात हैं। यह वह वर्ग है जो न तो अपने अधिकार जानता है, न उसके लिए आवाज उठाना या उसकी मांग करना। इसे यह भी नहीं पता कि बाल अधिकार क्या हैं तथा ये कब से लागू हैं। इनकी चुप्पी, शांति, निष्क्रियता आदि अनुशासन है तथा इससे अलग व्यवहार अनुशासनहीनता। यही अनुशासन का मानित पक्ष है तथा ऐसे बच्चे ही अनुशासित व अच्छे समझे जाते हैं।

समस्या के सुधार का उपाय

अनुशासन व दंड में भेद करना: व्यवस्था से रूबरू होते हुए दंड के उपकरणों का अनुशासन के उपकरणों में समावेशीकरण एक आम परिदृश्य है। इस समस्या का सामना

करते समय हमें उन सीमाओं का चिह्नांकन करना पड़ेगा जिस तक का व्यवहार अनुशासन की परिधि में आ सके ताकि शेष को दंडविधान माना जा सके।

गुस्सा बनाम शांत व्यवहार: ज्यादा मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों की जद में न जाते हुए इस मुद्दे पर सीधा नजरिया यह है कि अध्यापकीय गुस्सा दंड के उपकरणों से ही शांत होता है। अत: कक्षा में प्रवेश से पहले अध्यापक/अध्यापिका को अपना गुस्सा व 'ईगो' कक्षा के बाहर रखकर जाना चाहिए। इसके लिए व्यवहार को काबू में करने की गतिविधियों जैसे योग, ध्यान व अन्य समायोजन तकनीकों की मदद ली जा सकती है। कक्षा ज्ञान संवर्धन की जगह है, न कि गुरुता व गुस्सा प्रदर्शन की। इसमें ज्ञान संवर्धन दोतरफा होना चाहिए, विद्यार्थी अध्यापक/अध्यापिका से सीखें और अध्यापक/अध्यापिका विद्यार्थियों से। शांत व्यवहार अनुशासन के उपकरणों का प्रयोग करता है और गुस्सैल व्यवहार दंड के– इसका ध्यान हमेशा रखना चाहिए।

सुन सकने की क्षमता का विकास: यहाँ सुन सकने में सुनकर सहन कर सकने की क्षमता की भी जरूरत शिक्षक/शिक्षिका जमात से है। उसे उस मनोवृत्ति से उबरना होगा जो मध्ययुगीन 'गुरू कुम्हार सिश कुम्भ है' टाइप मानसिकता का संवहन करती है। कम से कम प्रारंभिक स्तर तक (मतलब 14 वर्ष की उम्र तक) के विद्यार्थियों से वात्सल्यवत व्यवहार तो किया ही जा सकता है। कुछ शब्द जो विद्यार्थियों का विश्वास शिक्षक/शिक्षिका वर्ग में बढ़ाते हैं, उनमें ''बेटा/बेटी'', ''बच्चों/बच्चियों'' आदि के संबोधन प्रमुख हैं।

सामान्य व लिखित निर्देश: सत्रारंभ में ही विद्यालयों को अनुशासन के संबंध में विद्यार्थियों के सामने स्पष्ट निर्देशों का प्रचार करना चाहिए। केवल ''अनुशासनहीन व्यवहार बर्दाश्त से बाहर होगा'' का नारा, विद्यार्थियों को कौन सी समझ देगा कि अनुशासनहीन व्यवहार क्या है। कम से कम सबसे ज्यादा घटित होने वाले पन्द्रह बीस अनुशासनहीन व्यवहारों की सूची बनाकर सत्रारंभ में ही विद्यार्थियों को उपलब्ध करायी जा सकती है।

इसके साथ ही विद्यालय की तरफ से शिक्षकों/शिक्षिकाओं को भी उन व्यवहारों की सूची दी जा सकती है, जिन्हें किसी भी परिस्थिति में विद्यार्थियों पर प्रयुक्त नहीं करना है। अधिकतम असहनीय व्यवहारों के लिए अपेक्षित व्यवहारों में कक्षा से बाहर निकाल देने, मेज पर खड़ा कर देने, शारीरिक या वाचिक दंड देने की बजाय कक्षा के बाद विद्यार्थी से व्यक्तिगत रूप से मिलकर बात करना, उसकी समस्या व व्यवहार के कारणों

को जानना व सहिष्णुता के साथ समझाना है। शिक्षक व छात्रों के लिए अनपेक्षित व्यवहार सूची को प्रत्येक कक्षा की दीवाल पर प्रवेश द्वार के पास चिपकाया भी जा सकता है।

कुछ मिथकों से बचाव: शिक्षा व्यवस्था संस्कृतियों के संवहन में रूढ़ व जड़ पड़ चुकी कुछ मान्यताओं और मिथकों का भी संवहन कर देती है। अट्ठारहवीं शताब्दी से पूर्व की धारणाएँ प्रथमत: तो सर्वसमाज की शिक्षा पर प्रश्नचिन्ह सा लगाती हैं, द्वितीयत: इसमें बच्चों (बच्चियों की शिक्षा का कोई औपचारिक सा मजबूत शिक्षा ढांचा इस समय तक समूचे परिदृश्य से गायब ही मिलता है।) को कोमल व शुद्ध नजरिये से न देखकर उदंड व चंचल (मनबढ़) नजरिए से देखने की बहुतायत है। भारतीय संस्कृति में 'गुरु कुम्हार सिश कुम्भ है' वाली मिथकवृत्ति पश्चिमी समान आवरण को लपेटकर 'स्पेयर द रॉड स्प्वाइल द चाइल्ड' बन गई। संस्कृत में इसने 'पालयते पंच वर्षाणि तद् दश वर्षाणि ताड़यते' का संवहन किया तथा जनश्रुतियों में यह ''लातों के भूत...'' वाले रूप में सामने आई (राय, 2009)। मानवतावादी व प्रकृतिवादी दृष्टिकोण, बच्चों के संदर्भ में, रूसो के बाद चलन में आया और बहुत बाद में यह बाल-अधिकारों में एक सामान्य रूप में अब के हालिया शिक्षा के अधिकार अधिनियम (अनु. 17) में पूरे दमखम के साथ 2010 ई. में सामने आया है (MHRD, 2010)। शिक्षकों/शिक्षिकाओं को इसे ध्यान में रखकर अपने कक्षा व्यवहार की रूपरेखा बनानी चाहिए।

विकल्पयुक्त व्यवहार उपलब्ध कराना: बच्चों/बच्चियों को कक्षा में व्यवहार विशेष से रोकने के पीछे का तर्क मजबूत व खुद में तर्कयुक्त होना चाहिए। विद्यार्थी ''ऐसा न करें'' इसके पीछे एक तर्कयुक्त वाक्य संरचना शिक्षक/शिक्षिका वर्ग की तरफ से प्रतिध्वनित होनी चाहिए। इसके साथ ही विद्यार्थी-अनपेक्षित व्यवहारों के लिए शिक्षक/शिक्षिका वर्ग को उनके सामने संभावित व्यवहारों की बुराइयों व खामियों को भी तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने की जरूरत है। 'यह मत करो' का आदेशात्मक वाक्य 'क्यों?' के उत्तर के साथ विद्यार्थियों के सामने रखना चाहिए। आखिर मनुष्य एक तर्कशील प्राणी है और समूची सभ्यता के विकास, आधुनिकीकरण व तर्कीकरण की वैज्ञानिक प्रवृत्ति में 'प्रश्नों' व 'संशयों' की भूमिका निस्संदेह काबिलेगौर है।

कक्षा अनुशासन से संबंधित मैन्युअल (विवरणिका): यदि संभव हो तो हर विद्यालय या शैक्षिक अभिकरणों के नीति नियंताओं द्वारा एक कक्षा-अनुशासन से संबंधित मैन्युअल का विकास करके उसे कार्यरत व भावी शिक्षकों/शिक्षिकाओं में वितरित कराया जा

सकता है। इसमें प्रमुख शिक्षाविदों द्वारा सुझाए गये अनुशासन संबंधी सामान्य व विशेष व्यवहारों को परिभाषित करते हुए इनका सामना करने की प्रविधियाँ शामिल की जा सकती हैं।

एक विद्यार्थी को एक व्यवहार विषेष के एवज या प्रतिउत्तर में दूसरी तरफ से होने वाले व्यवहार के कारण जानने का पूरा हक है। ऐसा करके, अध्यापक/अध्यापिका विद्यार्थी की गरिमा व लोकतंत्र में जानने के अधिकारों को मजबूत करते हैं।

और अंत में गुरुओं से उदार बनने की अपेक्षा के साथ अनुशासनहीनता व शारीरिक दण्ड की समस्या का समाधान हो सकता है। आखिर गुरुता को वहन करने वाली संस्कृति व परंपरा यह भी सिखाती है कि 'क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को अपराध'। बच्चे को बच्चा ही रहने दीजिए। उनका अनुभव संसार बहुत छोटा और व्यवहार विशेष बहुत ही शुरुआती व सीखने के दौर में है। धनात्मक व सकारात्मक उदारतापूर्ण व्यवहार उन्हें भी ऐसा करने को प्रेरित करेगा जो कहीं ज्यादा श्रेष्यकर होगा बनिस्पत कि दृढ़, आक्रामक व सर्वसत्तावादी व्यवहार के।

सन्दर्भ

एजुकेशन एण्ड नेशनल डेवलपमेंट, *रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमीशन* 1964-66, नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी, पृष्ठ 415

कुमार, कृष्ण (2004). बच्चे की भाषा और अध्यापक, (पुनर्मुद्रित), नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, पृष्ठ 13

गुप्त, जितेन्द्र (2010, मार्च). साम्यवाद, लोकतंत्र और हाइरॉर्की, समयांतर, नई दिल्ली : समयांतर, पृष्ठ 13

द राइट ऑफ चिल्ड्रेन टू फ्री एंड कंपल्सरी एजुकेशन बिल (2008), नई दिल्ली : एम.एच.आर.डी., पृष्ठ 6

राय, अखिल कुमार (2009, अप्रैल-जून). शिक्षा व्यवस्था में भय का चेहरा, परमिता, 5, वाराणसी, पृष्ठ 31

स्कूल इनडिसप्लीन– द केस स्टडी ऑफ एन इंस्टीट्यूशन इन एजुकेशनल स्टडीज एण्ड इन्वेस्टिगेशन-1962 , नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी 141-47

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 17, अंक 3, दिसंबर 2010

शोध टिप्पणी/संवाद

बुद्धि के सन्दर्भ में संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैलियों की उपादेयता

मुरलीधर मिश्रा*

सारांश

जब विद्यार्थियों की अधिगम शैली कक्षा-कक्ष अनुदेशन एवं विद्यार्थी अधिगम को प्रभावित करती है, तब क्या विभिन्न बुद्धि स्तरों- उच्च, निम्न व औसत वाले संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैली वरीयताएँ उनकी बुद्धि से स्वतंत्र होती हैं? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए अध्ययन उद्देश्यानुसार राजस्थान राज्य के जयपुर जिले में स्थित माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर से सम्बद्ध संस्कृत माध्यम के 10+2 स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा ग्यारह/कनिष्ठ उपाध्याय के 206 विद्यार्थियों का चयन किया गया। स्वतन्त्र चर संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की बुद्धि के सन्दर्भ में आश्रित चर अधिगम शैली का विश्लेषण एवं वर्णन करने हेतु वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया। उच्च, निम्न व औसत बुद्धि वाले संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की सभी अधिगम शैलियों—नमनीय बनाम गैर नमनीय, वैयक्तिक बनाम गैर वैयक्तिक, दृश्यात्मक बनाम श्रवणात्मक, क्षेत्र स्वतंत्र बनाम क्षेत्र आधारित, लघु अवधान अवधि बनाम दीर्घ अवधान अवधि, अभिप्रेरणा केन्द्रित बनाम अभिप्रेरणा गैर केन्द्रित तथा वातावरण उन्मुख बनाम वातावरण मुक्त के प्रति वरीयताएँ उनकी बुद्धि से स्वतंत्र होती हैं।

संस्कृत का अध्ययन अध्यापन वैदिक काल से चल रहा है, इसकी शिक्षण-

* रिसर्च फेलो, सतत शिक्षा तथा विस्तार विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, म.प्र.

विधियों के विकास का काल भी लम्बा रहा है। इस भाषा माध्यम से सम्बन्धित एवं असम्बन्धित दोनों ही पक्ष यह स्वीकार करते हैं कि संस्कृत शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया इस भाषा की तरह ही विशिष्ट है। इसके पठन-पाठन पर समकालिक अध्यापन विद्या सम्बन्धी नवाचारों का प्रभाव या तो हुआ ही नहीं है और यदि हुआ भी है तो सीमित ही। संस्कृत की मूलभूत विशिष्टताओं के अनुरूप विकसित शिक्षण विधाओं का विकल्प अन्य भाषाओं के लिए विकसित विधाएँ सामान्यत: कम ही बन पाती हैं। फलत: संस्कृत का पठन-पाठन परम्परा से अधिक प्रभावित व पोषित जान पड़ता है। राष्ट्र भाषा एवं मातृ भाषा हिन्दी का उद्‌गम भले ही संस्कृत से रहा हो, लेकिन अनेक भाषाओं एवं बोलियों वाले अपने स्वरूप के कारण इसमें नवाचारों की ग्राह्यता अपेक्षाकृत अधिक रही है। शोधकर्ता स्वयं संस्कृत माध्यम का विद्यार्थी रहा है तथा विद्यालयीन शिक्षण एवं अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त अनुभवों के आधार पर यह अनुभव करता है कि विद्यार्थियों की अधिगम शैलियाँ कक्षा-कक्ष में अनुदेशन एवं विद्यार्थी अधिगम को प्रभावित करती है।

जिस प्रकार बालक रूप-रंग, कद-काठी-भार, स्वास्थ्य आदि शारीरिक गुणों में एक दूसरे से भिन्न होते हैं, ठीक उसी प्रकार वे मानसिक गुणों में भी भिन्न होते हैं। एक ही आयु या कक्षा के कुछ बालक मानसिक क्रियाओं को करने में तेज होते हैं, कुछ औसत स्तर के तथा कुछ कमजोर होते हैं। बच्चों के बड़े होने पर उनकी बौद्धिक विभिन्नताएँ भी स्पष्ट होती चली जाती हैं। कुछ बालक एक ही बार बताने पर शब्दों को सीख जाते हैं, जबकि कुछ को अनेक बार बतलाना पड़ता है। बालकों में इस प्रकार के अन्तर प्राय: 'बुद्धि' के कारण होते हैं। यर्थाथत: प्रत्येक व्यक्ति या बालक बुद्धि की दृष्टि से अन्य बालकों या व्यक्तियों से भिन्न होता है। अधिगम तथा अधिगम शैली का साहित्य यह प्रमाण प्रस्तुत करता है कि बुद्धि विद्यार्थी अधिगम को तो प्रभावित करती ही है; किसी न किसी रूप में इसकी अधिगम शैलियों के विनिश्चयन में भी भूमिका हो सकती है। अधिगम शैली के साथ भाषा माध्यम का सम्बन्ध ज्ञात करने हेतु भारत में सम्पन्न हुआ कोई अध्ययन प्राप्त नहीं हुआ। विदेश में भी केवल एक अध्ययन फ्रैंच, स्पेनिश, अंग्रेजी भाषा माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैली जानने हेतु स्वेवैली (1982) द्वारा किया गया प्राप्त होता है। जब विद्यार्थियों की अधिगम शैली कक्षा-कक्ष अनुदेशन एवं विद्यार्थी अधिगम को प्रभावित करती है। तब क्या विभिन्न बुद्धि स्तर

(उच्च, निम्न व औसत) वाले संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैली वरीयताएँ उनकी बुद्धि से स्वतंत्र होती हैं? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने कं लिए बुद्धि के सन्दर्भ में संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैलियों का अध्ययन करने की आवश्यकता महसूस की गयी।

अध्ययन उद्देश्य

बुद्धि के सन्दर्भ में संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैलियों का अध्ययन करना।

परिकल्पना

संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैली वरीयताएँ उनकी बुद्धि से स्वतंत्र होती हैं ।

परिसीमाएँ

1. यह अध्ययन राजस्थान राज्य के जयपुर जिले में स्थित तथा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर से सम्बद्ध संस्कृत माध्यम के 10+2 स्तर के विद्यालयों में अध्ययन करने वाले कक्षा ग्यारह/कनिष्ठ उपाध्याय के विद्यार्थियों पर किया गया।
2. इस अध्ययन में डॉ. सुभाषचन्द अग्रवाल (1987) द्वारा वर्गीकृत सात अधिगम शैलियों को ही अध्ययन हेतु लिया गया।
3. संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैलियों का अध्ययन स्वतंत्र चर बुद्धि के सन्दर्भ में किया गया।
4. बुद्धि के सन्दर्भ में संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैलियों के परिकलित काई वर्ग मानों के सार्थक होने या सार्थक नहीं होने को ही अधिगम शैलियों के अध्ययन का मुख्य आधार बनाया गया।

शोध अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्यानुसार स्वतन्त्र चर 'संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की बुद्धि' के सन्दर्भ में आश्रित चर 'संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैली' का विश्लेषण एवं वर्णन करने के लिए 'वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि' का उपयोग किया गया।

न्यादर्शन एवं न्यादर्श

राजस्थान राज्य के जयपुर जिले में स्थित व माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर से सम्बद्ध संस्कृत माध्यम के 10+2 स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा ग्यारह (कनिष्ठ उपाध्याय) के 206 विद्यार्थियों को 'स्तरीकृत यादृच्छिक गैर आनुपातिक न्यादर्शन' विधि से चयनित कर बुद्धि और अधिगम शैली हेतु प्रदत्तों को संकलित किये गये।

शोध उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्यों के अनुकूल मानकीकृत वाचिक बुद्धि परीक्षण एवं अधिगम शैली सूची उपलब्ध होने के कारण 'उपलब्ध का उपयोग' इस सिद्धान्त का पालन करते हुए बुद्धि परीक्षण के लिए आर. के. ओझा एवं के. राय चौधरी द्वारा निर्मित मानकीकृत 'वाचिक बुद्धि परीक्षण' तथा विद्यार्थियों की अधिगम शैली की पहचान के लिए डॉ. सुभाषचन्द्र अग्रवाल (1983) द्वारा निर्मित 'अधिगम शैली सूची' का उपयोग किया गया।

प्रदत्तों की प्रकृति

बुद्धि लब्धि से सम्बन्धित प्रदत्त अंकों में एवं अधिगम शैली सूची से प्राप्त प्रदत्त वरीयताओं के रूप में प्राप्त हुए। इस प्रकार बुद्धि लब्धि तथा अधिगम शैली सूची से प्राप्त प्रदत्तों की प्रकृति मात्रात्मक प्रकार की थी।

सांख्यिकीय प्रविधियाँ

बुद्धि के आधार पर न्यादर्श को तीन स्तरों– उच्च, औसत एवं निम्न में वर्गीकृत करने के पश्चात् संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैलियों का अध्ययन करने के लिए 3×2 की तालिकाएँ निर्मित की गयीं। प्रत्येक अधिगम शैली के प्रति संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की प्रदर्शित वरीयताओं के काई वर्ग के मानों का परिकलन किया गया। जहाँ किसी अधिगम शैली पर विद्यार्थियों द्वारा दी गयी वरीयता 5 या इससे कम पायी गयी, वहाँ येट्स संशोधन किया गया।

निष्कर्ष एवं विवेचना

तालिका–1 में बुद्धि के सन्दर्भ में संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की सातों अधिगम शैलियों पर दी गयी वरीयताओं एवं उनके अवकलित काई–वर्ग के मानों का प्रस्तुतीकरण किया गया है।

तालिका-1

बुद्धि के सन्दर्भ में संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैलियाँ

अधिगम शैलियाँ	बुद्धि स्तर						काई वर्ग का अवकलित मान
	उच्च		औसत		निम्न		
	ध्रुव 1	ध्रुव 2	ध्रुव 1	ध्रुव 2	ध्रुव 1	ध्रुव 2	
नमनीय बनाम गैर नमनीय	12	03	57	16	78	40	2.857*
वैयक्तिक बनाम गैर वैयक्तिक	04	11	22	51	37	81	0.011*
दृश्यात्मक बनाम श्रवणात्मक	13	02	68	05	94	24	5.441*
क्षेत्र स्वतंत्र बनाम क्षेत्र आधारित	10	05	51	22	79	39	0.097*
लघु अवधान अवधि बनाम दीर्घ अवधान अवधि	03	12	28	45	55	63	3.267*
अभिप्रेरणा केन्द्रित बनाम अभिप्रेरणा गैर केन्द्रित	14	01	70	03	100	18	4.789*
वातावरण उन्मुख बनाम वातावरण मुक्त	08	07	41	32	60	58	0.512*
योग	15	73	118				

*सार्थक नहीं

तालिका–1 के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उच्च, औसत एवं निम्न बुद्धि वाले संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की सभी अधिगम शैलियों (नमनीय बनाम गैर नमनीय, वैयक्तिक बनाम गैर वैयक्तिक, दृश्यात्मक बनाम श्रवणात्मक, क्षेत्र स्वतंत्र बनाम क्षेत्र आधारित, लघु अवधान अवधि बनाम दीर्घ अवधान अवधि, अभिप्रेरणा केन्द्रित बनाम अभिप्रेरणा गैर केन्द्रित तथा वातावरण उन्मुख बनाम वातावरण मुक्त) पर दी गई वरीयताओं के अवकलित काई वर्ग मान .05 के विश्वास स्तर पर भी सार्थक नहीं हैं। अतः परिकल्पना 'संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैली वरीयताएँ उनकी बुद्धि से स्वतंत्र होती हैं' स्वीकृत हुई।

शोध परिकल्पना के परीक्षण से यह निष्कर्ष निकलता है कि उच्च, निम्न व औसत बुद्धि वाले संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों की सभी अधिगम शैलियों (नमनीय बनाम गैर नमनीय, वैयक्तिक बनाम गैर वैयक्तिक, दृश्यात्मक बनाम श्रवणात्मक, क्षेत्र स्वतंत्र बनाम क्षेत्र आधारित, लघु अवधान अवधि बनाम दीर्घ अवधान अवधि, अभिप्रेरणा केन्द्रित बनाम अभिप्रेरणा गैर केन्द्रित तथा वातावरण उन्मुख बनाम वातावरण मुक्त) के प्रति वरीयताएँ उनकी बुद्धि से स्वतंत्र होती हैं। साथ ही सम्बन्धित तालिका–1 के अवलोकन से पता चलता है कि बुद्धि के सन्दर्भ में संस्कृत माध्यम के विद्यार्थी नमनीय, गैर वैयक्तिक, दृश्यात्मक, क्षेत्र स्वतंत्र, दीर्घ अवधान अवधि, अभिप्रेरणा केन्द्रित तथा वातावरण उन्मुख अधिगम शैलियों को अधिक वरीयता देते हैं अर्थात् उच्च, औसत व निम्न बुद्धि वाले संस्कृत माध्यम के विद्यार्थी अधिगम समस्या के परम्परागत समाधानों से सन्तुष्ट न होकर सदैव अद्वितीय प्रतिक्रियाओं द्वारा समाधानों तक पहुँचने का प्रयास करने की प्रवृत्ति, किसी की सहायता से कार्य करना, दृश्यात्मक सहायक सामग्री से अधिक सीखना, लम्बे समय तक अनवरत कार्य करते रहना अर्थात् दीर्घ अवधि तक ध्यान को केन्द्रित रखना, माहौल से प्रभावित न होना अर्थात् स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करना, अधिगम हेतु उत्साह से युक्त होना तथा पूरी तरह से शान्त एवं संवेदनशील वातावरण में सीखना आदि को अधिक वरीयता देते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का उपर्युक्त निष्कर्ष बताता है कि उच्च, औसत व निम्न बुद्धि वाले संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों के द्वारा किसी भी अधिगम शैली के प्रति दी गयी वरीयताओं का उनकी बुद्धि से सार्थक साहचर्य नहीं है। यहाँ ऐसा कोई भी अध्ययन निष्कर्ष उपलब्ध नहीं हुआ जो इस निष्कर्ष से सीधे रूप में सम्बद्ध होता हो या इसका

विरोध करता हो। हालांकि पीडरसन (1984), योंग (1992), वैस्थाफर (1992), वर्मा व टीकू (1990) व देवी (2002) के अध्ययन यह प्रदर्शित करते हैं कि बुद्धि सार्थक ढंग से अधिगम शैली को प्रभावित करती है। जबकि मेलोन (1987) ने बुद्धि व अधिगम शैली के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं पाया। यद्यपि बुद्धि स्तरों का अधिगम शैली से सम्बन्ध है या नहीं, इससे सम्बन्धित उपलब्ध अध्ययनों से कोई सामान्यीकृत निष्कर्ष नहीं निकलता है। फिर भी संस्कृत भाषा माध्यम विशेष के विद्यार्थियों के सन्दर्भ में प्रस्तुत अध्ययन का यह निष्कर्ष न्यायोचित हो सकता है।

संदर्भ

अग्रवाल, सुभाषचन्द्र; लर्निंग स्टाइल अमंग क्रियेटिव स्टूडेन्ट्स, इलाहाबाद, सैन्ट्रल पब्लिशिंग हाऊस, 1987.

बोरिंग (1923); एज कॉटेड बाइ लेफ्रान्कोइज, गुई आर. (1992); साइकोलॉजी, वेल्मोन्ट, कैलीफोर्निया, कड्सवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, 25.

देवी, टी. कल्यानी (2002); रिलेशनशिप बिटविन इन्टेलीजेन्स एण्ड कॉग्नीटिव स्टाइल्स इन चिल्ड्रेन, एक्सपेरीमेन्ट्स इन एज्यूकेशन, XXX (1) जनवरी, 7-9.

मेलोन, आर.ए. (1987); दि रिलेशनशिप विटविन दा लेवल ऑफ कॉग्नीटिव डवलपमेंट एण्ड लर्निंग स्टाइल्स ऑफ दि एमर्जिंग एडोलसेन्ट्स, डिजरटेशन एब्सट्रेक्ट्स इन्टरनेशनल, 43 (3), 607-ए. पीडरसन, जे. के. (1984); दि क्लासिफिकेशन एण्ड कम्पेरिजन ऑफ लर्निंग स्टाइल प्रिफेरेन्स ऑफ लर्निंग डिसेबल्ड स्टूडेट्स, डिजरटेशन एब्सट्रेक्ट्स इन्टरनेशनल, 1985, 45 (9) 2810-ए.

वर्मा, बी. पी. एण्ड टीकू, आशा (1990); लर्निंग स्टाइल्स ऑफ हाई स्कूल स्टूडेन्ट्स - इफेक्ट ऑफ सोशियो-इकॉनोमिक स्टेटस एण्ड जनरल इन्टेलीजेन्स, इन्डियन एज्यूकेशन एण्ड रिव्यू, 25 (1), 31-40.

स्वेवैली, डोनाल्ड शिपले (1982); एनालिसिस ऑफ सलैक्टेड सैकण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स लर्निंग स्टाइल इन कनाडा, मैक्सिको एण्ड यूनाइटेड स्टेट्स, डिजरटेशन एब्सट्रेक्ट्स इन्टरनेशनल-ए, 43 (11), 1983, 3563.

वैस्थाफर, पैट्रीशिया कैश (1985); लर्निंग स्टाइल प्रिफरेसेज ऑफ हाई स्कूल स्टूडेन्ट्स : इम्पलीकेशन फॉर इन्सट्रक्शन, डिजरटेशन एब्सट्रेक्ट्स इन्टरनेशनल-ए, 47(06), 2108.

योंग, फंग लेन (1992); अ कम्पेरिटिव स्टडी ऑफ लर्निंग स्टाइल प्रिफरेन्सेज ऑफ स्टूडेन्ट्स विद लर्निंग डिसऐबिलिटीज एण्ड स्टूडेन्ट्स डू आर गिफ्टेड, जर्नल ऑफ लर्निंग डिसएबीलिटीज, बी. 25 (2) फरवरी, 124–132.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 17, अंक 3, दिसंबर 2010

शोधा टिप्पणी/संवाद

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया तथा क्रमबद्ध पर्याय

संगीता जैन* और **लक्ष्मी शर्मा****

शिक्षण है ऊर्जा, ऊर्जा का अथाह सागर समय रूपी किनारे पर अथक, निरन्तर, अंतहीन ऊर्जा की लहरें टकराती रहती हैं, जिसका ना कोई प्रारम्भ है और ना कोई अन्त, बस है तो केवल मध्य (बीच)। विद्यार्थी भी उसमें असीम सम्भावनाओं की एक छोटी तरंग है, एक छोटा बीज है।

तरंग की यह अभिलाषा कि वह सागर बन जाए और बीज का यह मनोरथ कि वह वृक्ष बन जाए स्वभाविक है। बीज जब फूलों में नहीं खिलता तब तक तृप्ति सम्भव नहीं होती। क्योकि जब तक फूल न खिले, तब तक बेचैनी रहेगी, अशांति रहेगी, संताप रहेगा। परन्तु जैसे ही फूल खिल जाएगा सफलता रूपी तृप्ति प्राप्त हो जाएगी।

संसार की प्रत्येक सत्ता उत्पाद-व्यय धौव्यात्मक है। प्रत्येक वस्तु (द्रव्य) में प्रतिपल कुछ नवीन पर्याय का उत्पादन होता रहता है और वर्तमान में जो पहले से विद्यमान है उस पर्याय का ह्रास (व्यय) होता रहता है। फिर भी वस्तु (द्रव्य) अपने वास्तविक स्वरूप में कायम रहता है। वस्तु के इन रूपांतरित स्वभाव के विषय में यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि इस रूपांतर का कोई सहज नियम है या हम जैसा चाहे, जब चाहे, रूपांतर कर सकते हैं।

अध्यापक तथा शिष्य का सम्बन्ध भी इस परिणमन स्वभाव के अन्तर्गत निहित है । अध्यापक एक कर्मठ, योग्य माली की भाँति कार्यशील है जो उचित भूमि तैयार करता है, समय पर सही बीजों को बोता है, और सिंचाई आदि करता है। बीज के अंकुरित होने के पश्चात् उनकी अच्छी प्रकार देख-भाल करता है ताकि अच्छी से अच्छी फसल का उत्पाद हो सके। किन्तु क्या, सभी बीज एकसमान् फल देते है? क्या, माली को अपने भरपूर प्रयासों के पश्चात् भी फसल रूपी फल अपने प्रयासों तथा इच्छानुरूप मिलता है? जबकि माली ने

* रीडर, एडवांस्ड कालेज ऑफ एजुकेशन, मथुरा रोड, औरंगाबाद, (पलवल) 121102
** प्रिंसिपल, एडवांस्ड कालेज ऑफ एजुकेशन, मथुरा रोड, औरंगाबाद, (पलवल) 121102

अपना पुरुषार्थ, कौशल तथा योग्यता सभी बीजों पर एक समान् किया है। फल अपनी-अपनी क्रमबद्धता अनुसार निश्चित हैं।

अध्यापक अपने प्रत्येक विद्यार्थी पर अपने ज्ञान, कौशल तथा योग्यता का प्रयोग करके सफलता रूपी उद्देश्य को प्राप्त करना चाहता है। परन्तु सभी विद्यार्थी एक समान परिणाम नहीं दे पाते, क्योंकि विद्यार्थी की परिणमन व्यवस्था (रूपांतरण) एक समान न होकर अलग-अलग है, स्वतन्त्र है। अत: वह केवल अध्यापक तथा विद्यार्थी के स्वयं के पुरुषार्थ पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि वह विद्यार्थी के अपने क्रमबद्धपर्याय पर भी निर्भर करता है।

क्रमबद्ध पर्याय क्या है?

क्रमबद्धपर्याय से अभिप्राय: प्रत्येक वस्तु एक निश्चित क्रम से ही परिणमीत (रूपांतरित) होती है तथा किस वस्तु में किस समय कौन सी पर्याय उत्पन्न होगी यह भी निश्चित नहीं है। प्रतिसमय की योग्यतानुसार निश्चित क्रम में परिणमन होने का नियम ही क्रमबद्ध पर्याय है।

क्रमबद्धपर्याय को समझने में एकान्त नियतवाद तथा पुरुषार्थहीनता का भय सर्वाधिक बाधक तत्व है। एकान्त नियतवाद के भय से व्याप्त, विह्वल लोग कहते हैं-यदि सब कुछ ही निश्चित मान लिया जाए तो संसार में कोई व्यवस्था ही नहीं रह जाएगी। फिर अपराधी को दण्ड़ क्यों दिया जाए? क्योंकि उस समय अपराध होना निश्चित ही था, इसीलिए हुआ, इसमें अपराधी का क्या दोष है?

कुछ लोगों को नियम के अनुसार रूपांतर स्वीकार करने में अव्यवस्था नजर आती है, परन्तु यदि सम्पूर्ण रूपांतरण व्यवस्था पर गम्भीरता से विचार किया जाए तो अव्यवस्था के स्थान पर सुन्दरतम व्यवस्था ख्याल में आएगी। जैसे नाटक के जो दृश्य व्यवस्थित दिखाये जाते हैं, वे तो पहले से निश्चित और पूर्ण व्यवस्थित होते ही हैं, किन्तु जो दृश्य अव्यवस्थित दिखाये जाते हैं, वे भी पूर्व नियोजित एवं पूर्ण व्यवस्थित होते हैं। ठीक इसी प्रकार यदि अपराधी के कर्म से अपराध होना निश्चित है तो उसका दु:ख भोगना भी तो निश्चित ही है। अज्ञानी व्यक्ति ही ऐसा सोच सकता है कि अपराध करने की तो खुली छूट मिल जाए, परन्तु वह यह भूल जाता है कि दण्ड़ मिलते समय उसे दण्ड़ भी अवश्य ही मिलना होगा, और अगर वह इस व्यवस्था को स्वीकार नहीं करता तब भी दण्ड़ मिलने के क्रम में उसे दण्ड़ मिलने से रोका नहीं जा सकता। जिस प्रकार यदि किसी के परिणमन में हिंसादि पाप निश्चित है तो उसका दण्ड भोगना या नरक जाना भी निश्चित है। जैसे सद्दाम हुसैन, जिसने हिंसादि कर्म किए और एक देश का उच्च शासक होते हुए भी उसे अत्यन्त भयानक दण्ड भोगना पड़ा, नरक भोगना पड़ा।

इसी प्रकार विद्यार्थी का ज्ञान सम्बन्धी भविष्य, ''यह पढ़ेगा तो पास होगा'' के रूप मे

अनिश्चयात्मक न होकर ''यह पढ़ेगा और अवश्य पास होगा'' अथवा ''नहीं पढ़ेगा तो पास भी नहीं होगा'' के रूप में निश्चयात्मक होता है। भविष्य को निश्चित मानने में वस्तु की स्वतन्त्रता छिन्न होती प्रतीत होती है, परन्तु उस समय उसका ध्यान उस बात पर नही जाता कि यदि हम भविष्य को अनिश्चित माने तो ज्योतिष ज्ञान केवल कल्पना मात्र रह जाएगा। जबकि सूर्य ग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि की घोषणा बरसों पहले कर दी जाती है और वे सत्य सिद्ध होती हैं।

अत: क्रमबद्ध परिणमन का अर्थ मात्र काल की बन्द्धैजता ही नहीं अपितु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव अथवा स्वभाव, पुरुषार्थ काललब्धि, भवितव्य (होनहार) एवम् निमित्त सभी के निश्चिय होने का नियम है। अभिप्राय: यह है कि जिस द्रव्य की जो पर्याय, जिस काल में, जिस निमित्त व जिस पुरुषार्थपूर्वक जैसी होनी है, उस द्रव्य की वह पर्याय उसी काल में उसी निमित्त व उसी पुरुषार्थपूर्वक, वैसी ही होती हैं, अन्यथा नहीं – यह नियम है।

मैडम क्यूरी ने निरन्तर तीन वर्षों तक एक प्रश्न का हल करने का प्रयास किया। जिस सवाल के हल पर उन्हें नोबल पुरस्कार भी मिला, किन्तु जब सब प्रयास समाप्त हो गये और मैडम क्यूरी थक कर बैठ गई तो उन्होंने प्रयास छोड़ दिया, कि बहुत हो गया और तीन वर्ष बेकार चले गये। किन्तु सही समय आने पर, जब वह गहरी नींद में सोई हुई थीं, अचानक उठी, अपनी अध्ययन मेज (Study Table) पर गई, प्रश्न हल किया और आकर गहरी नींद में सो गईं। प्रात: अपनी अध्ययन मेज को साफ करते समय, सवाल का हल देख कर चकित रह गईं। समझ नहीं आया कि हल आया कहाँ से। लिखावट तो उन्हीं की थी। उन्हें कुछ भी याद नहीं आ रहा था कि प्रश्न कैसे हल हुआ? और कोई व्यक्ति कमरे में मौजूद भी नहीं था। अपने कमरे को बन्द करके सोई थीं। कमरा अभी भी बन्द है! फिर गौर से देखा हस्ताक्षर उन्ही के हैं, यद्यपि थोड़े अस्त-व्यस्त हैं। याद करने पर पाया कि वह स्वयं सपने में उठी थीं और कुछ लिखा था–तब जाकर उन्हें पूरी बात याद आयी। उत्तर उसी के अन्दर से आया था! अत: सही समय, सही पर्याय, सही निमित्त, तथा सही समय (काल) में उनका पुरुषार्थ फलीभूत हुआ।

निष्पण अनुक्रमों की क्रमबद्धता को स्वीकार करने मे संसार को कोई बाधा नही होती। बाधा तो तब उत्पन्न होती है जब अनिष्पण भावी अनुक्रमों को निश्चित कहा जाता है जिससे सारा संसार चौंक पड़ता है। उससे यह प्रतीत होता है कि यदि सब कुछ निश्चित है, तो व्यक्ति सब कुछ करना, धरना, हमारा सम्पूर्ण पुरुषार्थ बेकार है। कर्तव्य रूपी अभिमान की जिस दिवार को वह मजबूत आधार मानकर खड़ा था, अकड रहा था, वह उसे ढ़हती हुई प्रतीत होती हैं, जिससे वह एकदम बौखला जाता है और यह बौखलाहट इतनी बढ़ जाती है

कि सर्वज्ञ भगवान को और उसकी सर्वज्ञता को जिसे वह हृदय से स्वीकार (बुद्धि से नहीं) कर रहा था, उसके प्रति शंकित हो जाता है और उसका विरोध करने लगता है। कभी कहता है कि वह भूतकाल और वर्तमान को तो जानता है क्योंकि भूतकाल घट चुका और वर्तमान में जो हो रहा है वह सबके समक्ष है, जिसे जानने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती, परन्तु प्रश्न तो यह उठता है कि भविश्य की जो घटनाएँ अभी घटित नहीं हुई हैं, जिन्हें अभी घटित होना है उन्हें कैसे जानेंगा? कभी कहता है कि वह भविष्य तो जानता है परन्तु उसे सशर्त जानता है। जैसे यदि कोई पुण्य कर्म करेगा तो वह सुखी, पाप करेगा तो दु:खी होगा। इसी प्रकार जो पढ़ेगा वह उत्तीर्ण होगा और जो नहीं पढ़ेगा अनुर्त्तीण होगा – आदि न जाने अनेकों अनेक रास्ते निकाल लेता है।

अत: जिस द्रव्य की, जो पर्याय, जिस समय, जिस कारण से होनी है, वह उसके अनुकूल होती है। श्रीमती इन्दिरा गॉधी (प्रधान मन्त्री, भारत) जिन्हें उनके स्वयं के रक्षक ने ही मार दिया। आन्ध्र प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री वाई. एस. राजशेखर रेड्डी घर से तो अपने हैलीकोप्टर में अपने कार्य हेतु चले थे, मगर नियति को कुछ और ही मन्जूर था। उनकी दुर्घटना हुई और उनकी मृत्यु हो गयी।

द्वारका के जलने की घोषणा बारह वर्ष पूर्व कर दी गयी और साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि किस निमित्त से, कैसे और कब यह सब कुछ घटित होगा, अनेकों कोशिशों, उपायों, के पश्चात् भी द्वारका को जलने से नहीं रोका जा सका। सब कुछ निमित्त ज्ञान के रूप में घटित हुआ।

आचार्य भद्रबाहु ने निमित्त ज्ञान के आधार पर उत्तर भारत में बारह वर्ष के अकाल की घोषणा की थी, जो पूर्णत: सत्य सिद्ध हुई। जैन समाज के शास्त्र तिलोयपण्णती, अधिकार 4 श्लोक 1002 से 1016 तक में निमित्त ज्ञान द्वारा भविश्य जानने का स्पष्ट आलेख है।

अत: जो होना होता है वह होकर ही रहता है। हम व्यर्थ के ''अंहकार'' से पीड़ित रहते हैं कि इस कार्य का मैं कर्त्ता हूँ। जिस कार्य को जिस समय जहाँ पर, जिसके द्वारा, जिस प्रकार से होना लिखा है, वह उसी समय, वहीं पर, उसी के द्वारा और उसी प्रकार सम्पन्न होगा। माली तो अपने सभी बीजों पर समान मेहनत करता है, परन्तु कुछ बीज फल देते हैं और कुछ नहीं, उसी प्रकार अध्यापक अपने सभी विद्यार्थियों को समान रूप से अपने ज्ञान, कौशल, अनुभव देता है। परन्तु विद्यार्थियों की सफलता और असफलता उनके स्वयं के क्रमबद्धपर्याय पर निहित्त है। परन्तु इनका यह आशय नहीं कि व्यक्ति पुरुषार्थ करना छोड़ दें। अनगढ़ पत्थर को, सुन्दर मनमोहक रूप देने के लिए पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा!

पुरुषार्थ के बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं होता। परन्तु पुरुषार्थ निज में, स्वयं में है,

पर (दूसरे) में नहीं। मनुष्य के पुरुषार्थ का कार्य पराया ना होकर स्वयं में होता है। कर्त्तव्य के अहंकार से ग्रस्त इस संसार को दूसरे (पर) में या पर्याय में कुछ फेर बदल करने में ही पुरुषार्थ नजर आता है। किन्तु पर (दूसरे) और पर्याय सम्बन्धी विकल्पों से विराम लेकर स्वः में स्थिर हो जाने मे पुरुषार्थ नहीं दिखता।

गहराई से विचार करें तो क्रमबद्धपर्याय के निर्णय में ही उन्नत पुरुषार्थ आ जाता है। क्रमबद्धपर्याय का निर्णय स्वयं उन्नत पुरुषार्थ का कार्य है। पर कर्तव्य के अहंकार की बात जिसे अज्ञानी संसार पुरुषार्थ मान बैठा है, उसे तो टूटना ही चाहिए, क्योंकि वह सच्चा पुरुषार्थ नहीं है। अतः क्रमवद्धपर्याय की श्रद्धा से पर कर्त्तव्य का अहंकार टूटना चाहिए और पुरुषार्थ का सही स्वरूप समझ में आना चाहिए।

किसी ने माइकल एंजलो से कहा – एक चर्च के बाहर एक बड़ा सा पत्थर बहुत समय से पड़ा हुआ है। उसे चर्च बनाने वाले कारीगरों ने बेकार समझ कर इसका उपयोग नही किया मगर माइकल एंजलो ने इस पत्थर पर एक विशाल प्रतिमा 'क्राइस्ट' का निर्माण किया था कि पत्थर तो व्यर्थ था, फेंक दिया गया था, तुमने इतनी सुन्दर प्रतिमा कैसे बनाई?

माइकल एंजलो का कहना था कि मैंने कुछ नहीं किया है। मैं केवल निमित्त हूँ। प्रतिमा तो पत्थर में छुपी थी। मैने पहचानी है व पुरुषार्थ किया है। मैंने आवाज सुनी, मैं यहॉ से गुजरता था कि पत्थर चिल्लाया और मैं हरकत में आया। जो अनछिपा था उसको मेरे द्वारा उधाड़ दिया गया। अतः पत्थर की पर्याय जिस काल में, जिस निमित्त, और जिस पुरुषार्थ से रूपांतरित होनी थी, वह पर्याय उसी काल में, उसी निमित्त व उसी पुरुषार्थपूर्वक से प्रतिमा के रूप में फलित हुई, अन्यथा कितने समय से, योग्य कारीगरों द्वारा बेकार समझ कर एक तरफ रख छोड़ी गई थी।

क्रमबद्धपार्यय के निर्णय से मति (बुद्धि) व्यवस्थित हो जाती है, कर्तव्य का अहंकार गल जाता है, सहज ज्ञातादृष्टापने का पुरुषार्थ जागृत होता है, पर में फेर-बदल करने की बुद्धि समाप्त हो जाती है, इस कारण तत्सम्बन्धी आकुलता-व्याकुलता भी चली जाती है, आनन्द प्रगट होने के साथ-साथ अनन्त शांति का अनुभव होता है।

इसी प्रकार अध्यापक को 'कर्त्तव्य के अहंकार' से ग्रस्त ना होकर ''अनन्त पुरुषार्थ'' करना चाहिए। वह केवल मार्गदर्शन करने का एक साधन मात्र है। सफलता-विफलता प्रत्येक विद्यार्थी की अपनी क्रमबद्धता के अनुसार होनी है। परिणाम तो निश्चित है। परिणाम उसके कर्मानुसार, प्रयत्न अनुसार और अन्नत पुरुषार्थ अनुरूप प्राप्त होंगे।

Events do not happen, they already exists and are seen on time machine.

अत: केवल अध्यापक को यह दोष देना कि उसने विद्यार्थियों को भली प्रकार शिक्षण नहीं दिया या विद्यार्थियों को यह दोष देना कि उसने ठीक प्रकार मेहनत नहीं की अनुचित होगा। प्रत्येक विद्यार्थी तथा अध्यापक अपनी क्रमबद्धता के अनुरूप कार्य करने को प्रेरित रहता है और पुरुषार्थ करता है। आवश्यकता है कर्त्तव्य के अहंकार को छोड़कर 'अनन्त पुरुषार्थ' करने का फल निश्चित है। कहते है ना,

कि मुद्दई लाख बुरा चाहे तो क्या होता है,
होता है वही जो मन्जूरे खुदा होता है।

अत: किस ओर इशारा है, हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। होना वही है जो लिखा है अर्थात क्रमबद्ध है, निश्चित है। मिलना था राम को राज्य, मिल गया वनवास। अत: जिस द्रव्य का, जो पर्याय, जिस काल में, जिस विधान से, जिस निमित्तपूर्वक जैसा होना है, उस द्रव्य की, वह पर्याय, उसी काल में, उसी विधान में, उसी निमित्तपूर्वक, वैसा ही होगा, उसे इन्द्र तो क्या जैनेन्द्र (भगवान्) भी नहीं पलट सकते हैं।

''इस प्रकार स्वभाव, निमित्त, नियति, पुरुषार्थ व भवितव्य इन पाँच समावयों से समवेत ही कार्य व्यवस्था की सिद्धि है, ऐसा प्रयोजन है।''

क्या कली को फूल बनने में कोई अड़चन आती है। कली को खींच-खींच कर फूल बनाना पड़ता हैं? पौधों को जमीन सें खींच-खींच कर बाहर निकालना पडता हैं। अपने आप से बढ़े चलें आते हैं। कलियां लग जाती हैं, कलियां खिल जाती हैं, फूल बन जाती हैं, अपनी सुगंध बिखेर जाती हैं, सब चुपचाप पर्याय, समय, निमित्त अनुसार होता चला जाता हैं, यद्यपि पुरुषार्थ स्वाभाविक हैं। नहीं नाउम्मीद इकबाल अपनी किश्ते वीरा से,

जरा नम हो तो यह मिट्टी बड़ी जरखेज है साकी !

इस विषय पर अधिक शोध की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1980, क्रमबद्ध पर्याय, डा. हुकमचन्द भारिल्ल, पण्डित टोडरमल, स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

1991, एस धम्मो संनतनो, धम्मपद ओशा (2)-31 प्रेस लि. बम्बई

तिलोयपण्णती, श्री 1008 चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन, अतिराम क्षेत्र, अलवर।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 17, अंक 3, दिसंबर 20010

शोध टिप्पणी/संवाद

महाविद्यालयी शिक्षकों द्वारा अवलोकित शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों के संस्थागत वातावरण तथा उनकी समायोजन समस्याओं का संबंध

अश्वनी कुमार गौड़*

यू.जी.सी. समर्थित शैक्षिक स्टाफ कॉलेज (ए.एस.सी)/पुनश्चर्या पाठ्यक्रम केन्द्रों (आर.सी.सी) का परिचय: 1949 में विश्वविद्यालय आयोग[1] ने महाविद्यालय शिक्षकों की शिक्षा व्यवस्था को सुधारने के क्रम में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि शैक्षिक प्रक्रिया की सफलता मात्र उत्तीर्ण विद्यार्थीयों के प्रतिशत के रूप में न माप कर उस अध्यापक के ज्ञान की गुणवत्ता में वृद्धि करने हेतु अभिविन्यास कार्यक्रम द्वारा उसका ज्ञान उन्नयन किया जाये।

शिक्षा आयोग[2] 1966 ने भी सेवाकालीन प्रशिक्षण को अत्यन आवश्यक बताया था। उसके शब्दों में-''शिक्षा के सभी क्षेत्रों में तेजी से हो रही उन्नति के कारण और अध्यापन के सिद्धान्तों और प्रयोगों में लगातार हो रहे विकास के कारण सेवाकालीन प्रशिक्षण का प्रावधान अत्यन्त आवश्यक है।'' शिक्षा आयोग के तदुपरान्त **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986**[3] के सक्रिय कार्यक्रम के अनुसरण में यू.जी.सी ने विभिन्न विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों में शिक्षकों के स्तर को सुधारने की आवश्यकता को स्वीकार किया तथा उन्हें व्यावसायिक एवं जीवनचर्या विकास के अवसर उपलब्ध

[1] दी रिपोर्ट ऑफ द यूनिवर्सिटी एजूकेशन कमीशन, दिसम्बर, 1948-अगस्त 1949, वॉल्यूम-139-140
[2] शिक्षा आयोग की रिपोर्ट 1964-66, पृष्ठ 96-97
[3] राष्ट्रीय शिक्षा नीति की रिपोर्ट 1986, पृष्ठ 166-168

* एसोसिएट प्रोफेशर, शिक्षा संकाय दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट, (डीम्ड यूनिवर्सिटी) आगरा

कराये जाने का प्रस्ताव रखा, जिससे वे शिक्षा व्यवस्था में अपनी भूमिका एवं उत्तरदायित्व को पूरा कर सकें।

श्री जवाहर लाल नेहरू[4] ने विश्वविद्यालय/ महाविद्यालयों के मूल उद्देश्य एवं राष्ट्र जीवन में उसकी भूमिका को व्यक्त करते हुए कहा कि विशिष्ट विषयों, प्रविधियों एवं विधियों में व्यवस्थित अभिविन्यास द्वारा शिक्षकों की प्रेरणा को बढ़ाया जाये, जिससे शिक्षकों में मूल्यों की सही छाप पड़े, जिससे वे नवप्रवर्तन एवं सृजनात्मक कार्यों के लिए प्रोत्साहित हों, जो नीति के क्रियान्वयन के लिए महत्वपूर्ण हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा प्रस्तावित पद निम्नलिखित हैं–

1. प्रवक्ताओं के स्तर पर सभी नवीन प्रवेशकों के लिए शिक्षण–विधियों, शिक्षा शास्त्र, शिक्षा मनोविज्ञान आदि में विशिष्ट प्रकार से तैयार, अभिविन्यास पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जाये।
2. नवनियुक्त शिक्षकों को 8 वर्ष की निरन्तर सेवा तक अभिविन्यास कार्यक्रम/ पाठ्यक्रम में भाग लेना होगा, तदुपरान्त एक वर्ष के अन्तराल के बाद ऐसे शिक्षक पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का विकल्प ले सकते हैं।
3. जिन शिक्षकों ने पहले अभिविन्यास कार्यक्रम/पाठ्यक्रम में भाग नहीं लिया है उनके लिए पात्रता की अवधि 'पांच वर्ष' से घटाकर 'दो वर्ष' कर दी गई। फिर भी, दो उत्तरोत्तर पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों में अन्तराल सामान्यतः 'दो वर्ष' होना चाहिए, जिसमें ढील दी जा सकती है, यदि अपनी जीवनवृत्ति की उन्नति के लिए पात्रता शर्त को पूरा करने हेतु शिक्षक के लिए यह अनिवार्य हो।
4. अधिक से अधिक महाविद्यालयों को शामिल कर एवं विश्वविद्याय के आन्तरिक साधनों द्वारा एक अभिविन्यास कार्यक्रम की व्यवस्था की जाये।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में यू.जी.सी. ने विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के नवनियुक्त प्रवक्ताओं के लिए सम्पूर्ण देश में शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों (ए.एस.सी) की स्थापना का समर्थन किया।

2. शैक्षिक स्टाफ कॉलेज के उद्देश्य

यू.जी.सी के अध्यक्ष **प्रो. यशपाल**[5] जिन्होंने बम्बई कार्यशाला में विश्वविद्यालय एवं

[4] धर, बी.बी. एंड सिंह, टी. (1990)–''एकेडेमिक स्टाफ कॉलेज'' ए डेवलपिंग कॉन्सैप्ट, स्टर्लिंग पब्लिकेशन्स प्राइवेट लि., न्यू देहली।

[5] प्रो. यशपाल, इम्पोर्टेंट रिकमनडेशन्स मेड एट द नेशनल वर्कशॉप ऑन एकेडेमिक स्टाफ कालेज हेल्ड एट बॉम्बे यूनीवर्सिटी ऑन 14 अगस्त, 1987

महाविद्यालय के नवनियुक्त प्रवक्ताओं के लिए अभिविन्यास पाठ्यक्रम एवं शैक्षिक स्टाफ कॉलेज के उद्देश्य की व्याख्या की एवं इस बात पर जोर दिया कि ये अभिविन्यास पाठ्यक्रम विशिष्ट विषयपरक नहीं होंगे। इस प्रकार इन कार्यक्रमों के पीछे मूल उद्देश्य विषयों और नये विचारों को प्रकट करना तथा शिक्षा को व्यवसाय के रूप में जोड़ना है। शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों में संचालित अभिविन्यास पाठ्यक्रम के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. सार्वभौतिक एवं भारतीय संदर्भ में, सामान्य एवं उच्च शिक्षा के महत्व को समझना।
2. शिक्षा एवं आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास के मध्य सम्बन्धों को जानना विशेषकर भारतीय राजनीति के संदर्भ में, जहाँ धर्मनिरपेक्ष एवं समानता समाज के आधारभूत लक्ष्य हैं।
3. एक धर्मनिरपेक्ष एवं समतावादि समाज के राष्ट्रीय लक्ष्य को प्राप्त करने में विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षक की भूमिका को समझना।
4. विश्वविद्यालय एंव महाविद्यालय स्तर पर शिक्षण के आधारभूत कौशलों को सुधरना व अर्जित करना।
5. विशिष्ट विषयों के विकास के लिए जागरुक रहना।
6. सम्पूर्ण व्यवस्था में शिक्षक की भूमिका को जानना एवं विश्वविद्यालय/महाविद्यालय के प्रबन्ध एवं संगठन को समझना।
7. व्यक्तित्व विकास के सृजनात्मक एवं प्रेरणादायक अवसरों का उपयोग करना।

3. शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों/पुनश्चर्या पाठ्यक्रम केन्द्रों का संस्थागत वातावरण

3.1 संस्थागत वातावरण की अवधारणा

संस्थागत वातवरण शब्द का प्रयोग संभवत: सर्वप्रथम कार्नेल ने सन् 1955 में किया था। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग संस्था में व्यक्तियों द्वारा अपने कार्यों तथा कर्त्तव्यों की अपनी साथ व्याख्या करने के मधुर मिश्रण को निर्दिष्ट करने में किया है। इसी को सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्षण कहते हैं।

उन्होंने संस्था की नैतिक संरचना के रूप में व्याख्या की है। जिसके अन्दर समूह जो कि पदानुक्रम में कुछ बड़े और कुछ छोटे होते हैं। अर्थपूर्ण कार्य संचालन करते हैं। कार्य संचालन की निधारित प्रविधियाँ, उद्देश्य नीति, निवेश, उत्पादन आचरण एवं अनुशासन के नियम आदि पर्यावरण का सृजन करते हैं। जिसमें व्यक्ति समूह के साथ अन्त:क्रिया

का संचित प्रभाव संस्थागत वातावरण की व्याख्या करता है।

विभिन्न लेखकों ने संस्थागत वातावरण शब्द को भिन्न-भिन्न ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है। उदाहरणार्थ 1957 में **आर्गीरिस** ने संस्थागत वातावरण के लिए जीवित तन्त्र शब्द का प्रयोग किया। **हालपिन** ने संस्थागत वातावरण शब्द का प्रयोग समूह के अन्दर अनुभूति और व्यवहार के सामान्य बहाव के सन्दर्भ में किया है।

टैगरी[6] ने संस्थागत वातावरण की निम्न परिभाषा दी है-''संस्थागत वातावरण संस्था के आन्तरिक वातावरणों का एक चिरस्थायी गुण है-

1. जिसका इसके सदस्यों, द्वारा अनुभव किया जाता है।
2. जो सदस्यों के व्यवहार को प्रभावित करता है।
3. जिसका वर्णन संस्था के अभिवृत्तियों अथवा विशेषताओं के विशेष या अमुक दल के मूल्यों के बदले में किया जा सकता है।

डेविस[7] ने संस्थागत वातावरण के विषय में निम्न विचार व्यक्त किये हैं। संस्थाएं अंगुली के चिन्ह या हिम की परतों के समान हमेशा अद्वितीय या विशिष्ट होती है। प्रत्येक संस्था की अपनी निजी संस्कृति, परम्पराएं तथा कार्यकर्ता के ढंग होते हैं, जो सम्पूर्ण रूप से उसके वातावरण में सम्मिलित होते हैं। प्रत्येक नया कार्यकर्ता या व्यवसाय इच्छुक व्यक्ति संस्था से अपने मानोवैज्ञानिक मेल मिलाप इस आशा से करता है कि संस्था उसे आश्रय योग्य वातावरण प्रदान करेगी जो उसे उसके आर्थिक, सामाजिक एंव मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में सहायता करेगी।

3.2 शैक्षिक स्टाफ कॉलेज/पुनश्चर्या पाठ्यक्रम केन्द्रों का प्रबन्ध

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने 1986 की राष्ट्रीय शिक्षानीति और इसके सक्रिय कार्यक्रम के अनुसरण में देश में विभिन्न विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों में शैक्षिक स्टाफ कॉलेज एवं पुनश्चर्या पाठ्यक्रम केन्द्रों की स्थापना की है। इस प्रकार ये संस्थाएं नवनियुक्त प्रवक्ताओं के लिए अभिविन्यास कार्यक्रम एवं सेवारत शिक्षकों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों का संचालन कर रहे हैं। पुनश्चर्या पाठ्यक्रम से सेवारत शिक्षकों को आपस में एक-दूसरे से सीखे गये अपने अभिजात अनुभवों के आदान-प्रदान के

[6] टैगिरी, आर (1967): ''आर्गेनाइजेशनल क्लाइमेट ऐसन्लोरेशन ऑफ ए कॉनसैन्ट'', बोस्टन हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. सं.-27

[7] डेविस कीथ (1967): ''डेवलपिंग ए साउण्ड विहेविरल क्लाइमैट'' इन ह्यूमैन रिलेशन्स एट वर्क, डाइनेमिक्स ऑफ आर्गनाइजेशनल बिहेवियर चैप्टर-5, मैक्ग्राहिल, इंक न्यूयार्क (द्वितीय संस्करण) पृ. सं.-78)।

अवसर मिलते हैं। यह ऐसा मंच है जिसमें विषयों, प्रौद्योगिकीय, संचालन इत्यादि में हुई नवीनतम प्रगति की जानकारी समाविष्ट है। यू.जी.सी. पाठ्यक्रमों के संचालन के लिए अतिथेय विश्वविद्यालयों/संस्थानों को मुख्यतः संसाधन व्यक्तियों, भागीदारों, पुस्तकों/सामग्री, कार्यरत व्यय और यू.जी.सी. आवंटित स्टाफ इत्यादि के खर्च के रूप में कार्यक्रम के अन्तर्गत मानदण्डों के अनुसार शत-प्रतिशत वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

3.3 शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों द्वारा संचालित अभिविन्यास कार्यक्रम की पद्धति

अभिविन्यास पाठ्यक्रम के लिए पाठ्यचर्या में 144 सम्पर्क घण्टों के पाँच संघटक हो सकते हैं, अर्थात 4 सप्ताह के कार्यक्रम के लिए 6 घण्टे प्रतिदिन और न्यूनतम 108 घण्टे 3 सप्ताह के कार्यक्रम के लिए। इसके अतिरिक्त विषय क्षेत्रों से सम्बद्ध विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षण व अनुसंधान में कम्प्यूटर की जानकारी तथा कम्प्यूटरों का अनुप्रयोग भी समाविष्ट करने की आवश्यकता है, सभी यू.जी.सी-ए.एस.सी. एवं यू.जी.सी.-आर.सी.सी. तदनुसार कार्यक्रमों/पाठ्यक्रमों को क्रियान्वित करने की दिशा में आवश्यक कदम बढ़ाएं।

3.4 शैक्षिक स्टाफ कॉलेज/पुनश्चर्या पाठ्यक्रम केन्द्रों में सहभागिता करने वाले विश्वविद्यालयी/महाविद्यालयी शिक्षकों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता

सहभागी शिक्षक को 500 कि.मी. से परे या 12 घण्टे से अधिक की यात्रा, जो भी कम हो, द्वितीय श्रेणी या प्रथम श्रेणी रेल किराया, रेलवे टिकट या शिक्षक ने यात्रा वास्तव में प्रथम श्रेणी से की है, इसके समर्थन में प्रलेख प्रस्तुत करने पर दिया जा सकता है। शिक्षकों के लिए विश्वविद्यालय द्वारा खाने-पीने और रहने की मुफ्त व्यवस्था की जाएगी। फिर भी, खाने-पीने और रहने के खर्च को पूरा करने के लिए यू.जी.सी. विश्वविद्यालय को बाहर से आकर भाग लेने वाले को 'क श्रेणी के नगर के लिए 115 रुपये, अन्यों के लिए रूपये 100/-और स्थानीय भाग लेने वाले शिक्षक के लिए रु. 75/- प्रतिदिन का भुगतान करेगा। यदि खाने-पीने और ठहरने की मुफ्त व्यवस्था की गई हो तो कोई दैनिक भत्ता स्वीकार्य नहीं होगा। स्थानीय भागीदारों के सम्बन्ध में रु. 75/- के दैनिक भत्ते में रु. 10/-प्रतिदिन का वाहन भत्ता शामिल है और छुट्टियों/रविवार को छोड़कर जितने दिन कार्यक्रम में उपस्थित हुए उतने दिनों की वास्तविक संख्या के हिसाब से भुगतान किया जाएगा।

3.5 सहभागी शिक्षकों के लिए पाठ्यक्रम सामग्री

सहाभागी शिक्षकों को, पाठ्यक्रम में कार्यग्रहण से पहले, पाठ्यक्रम विषय और मुद्रित

रूप में अपेक्षित सामग्री दी जाए क्योंकि सहभागी शिक्षक शिक्षण में अनुभव प्राप्त करता है और उसमें अपना योगदान भी देता है।

3.6 जीवनवृत्ति उन्नयन योजना के अन्तर्गत पाठ्यक्रमों की अपेक्षित संख्या

1. वेतमनों के संशोधन और विश्वविद्यालयों तथा कॉलेजों में शिक्षकों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यताएं एवं 1998 के मानकों के अनुपालन के लिए अन्य उपाय पर यू.जी.सी. अधिसूचना के अनुसार वरिष्ठ वेतनमान में रखने के लिए मार्ग निर्देशों में अन्य अपेक्षाओं के अतिरिक्त, प्रवक्ता को एक अभिविन्यास कार्यक्रम और एक पुनश्चर्या पाठ्यक्रम में भी भाग लेना चाहिए। (पी-एच.डी डिग्रीधारी को एक पुनश्चर्या पाठ्यक्रम से छूट प्राप्त होगी।)
2. प्रवक्ता से प्रवक्ता (वरिष्ठ स्केल) चयन ग्रेड में जीवनवृत्ति के उन्नयन के लिए अभिविन्यास पाठ्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम में भाग लेना अनिवार्य अपेक्षा है। जब कभी अभिविन्यास/पुनश्चर्या पाठ्यक्रम की अपेक्षा पूरी न हुई हो तो पदोन्नति रोकी नहीं जाएगी, किन्तु यह अपेक्षा निर्धारित समय तक अवश्य पूरी हो जानी चाहिए।
3. कार्यक्रम/पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सन्दर्भ की शर्तों के अनुसार सभी पात्र शिक्षकों को अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम में अनिवार्यत: भाग लेना होगा। यू.जी.सी. पाठ्यक्रम में भाग लेने वाले शिक्षकों को वरियता देती है, उनको नहीं जो समकक्ष पाठ्यक्रमों पर विचार या अनुमोदन करवाना चाहते हैं, जैसा कि अनेक शिक्षकों द्वारा अनुरोध किया जाता है।
4. विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय इच्छुक पात्र शिक्षक को उनकी पात्रता के आधार पर यू.जी.सी.-ए.एस.सी. पाठ्यक्रमों में भाग लेने की अनुमति देंगे, अन्यथा इस प्रयोजन के लिए शिक्षक को न भेजने के सम्बन्ध में शिक्षक को विधिमान्य कारण सूचित करने होंगे, क्योंकि उनके शिक्षकों के लिए पाठ्यक्रम इस प्रकार आयोजित किए गए हैं कि उनसे अन्तत: विश्वविद्यालय एवं कॉलेज को लाभ होगा।

3.7 शैक्षिक स्टाफ कॉलेज/पुनश्चर्या पाठ्यक्रम केन्द्रों में अध्यापन करने वाले विषय विशेषज्ञ शिक्षकों का निर्धारण

यू.जी.सी. की शत-प्रतिशत वित्तीय सहायता से देशभर में चलाए जा रहे पाठ्यक्रमों में उत्तम गुणवत्ता और पर-स्थिति लाने और कार्यक्रमों में राष्ट्रीय भावना सन्निहित करने के लिए यू.जी.सी. द्वारा यह प्रयास किया गया है कि अभिविन्यास कार्यक्रम एवं पुनश्चर्या

पाठ्यक्रम के वर्ण्य विषय तैयार किए जाएं, उनकी पुनर्संरचना की जाए और विषय में उत्कृष्ट विशेषज्ञों की सहायता से ए.एस.सी. एवं आर.सी.सी के लिए विषय विशेषज्ञों के द्वारा प्रयुक्त किए जाने वाले विषय पर पढ़ाया जाए।

3.8 शिक्षक एवं पाठ्यक्रम सहभागियों का अनुपात

यू.जी.सी. ने अभिविन्यास एवं पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों में अध्यापन करने वाले विषय विशेषज्ञ शिक्षकों एवं सहभागी शिक्षकों का अनुपात 1:30 का निर्धारण किया है। किन्तु कहीं-कहीं पर सहाभागी शिक्षकों की संख्या 50 एवं 60 तक दिखायी देती है।

3.9 भौतिक सुविधाएं

कुछ सहभागी शिक्षकों का मानना है कि शत्-प्रतिशत् वित्तीय सहायता प्राप्त होने पर भी कुछ शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों में भवन, फर्नीचर, कक्षों की कमी, पुस्तकालय सुविधा का अभाव, प्रयोगशाला, पर्याप्त उपकरण एवं यन्त्र एवं नवीन अभिनवनों की कमी, शिक्षण सामग्री का अभाव, सहाभागी शिक्षकों के लिए आवास, भोजन व्यवस्था एवं अन्तराल में उचित अल्पहार व्यवस्था न होना आदि अनेक कारक शोचनीय स्थिति को प्रदर्शित करते हैं।

3.10 अध्ययन-अध्यापन

शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों में यू.जी.सी. द्वारा अध्यापन कार्य हेतु प्रोफेसर नियुक्त किए गये हैं, लेकिन ये रीडर एवं प्रवक्ताओं को भी विषय विशेषज्ञ (Resource Person) के रूप में आमंत्रित कर लेते हैं।

3.11 शैक्षिक स्टाफ कॉलेज/पुनश्चर्या पाठ्यक्रम केन्द्रों के कर्मचारियों की अभिवृत्ति

कुछ सहभागी शिक्षकों का मानना है कि कुछ शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों में शत्-प्रतिशत् वित्तीय सहायता प्राप्ति के पश्चात् उस धन का पूर्ण उपयोग नहीं किया जाता है। बल्कि धन बचाना चाहते हैं एवं उनके साथ ए.एसी.सी./आर.सी.सी. के कर्मचारियों द्वारा शुष्क, कठोर एवं मनमाना व्यवहार किया जाता है।

3.12 शिक्षा जगत में स्थान

कुछ सहभागी शिक्षकों का मानना है कि अभिविन्यास कार्यक्रमों का उद्देश्य प्रवक्ताओं के मन में सामाजिक, बौद्धिक एवं नैतिक पर्यावरण की जागरूकता के माध्यम से स्वावलम्बन की गुणवत्ता पैदा करना और उनमें स्वान्तः शक्ति एवं विश्वास की खोज

करना है। जिसे सहाभागी शिक्षक प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं इसलिए ये शिक्षा जगत में उचित स्थान प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं।

4. सहभागी विश्वविद्यालय/महाविद्यालयी शिक्षकों का समायोजन

प्राय: जीवन के समस्त पहलुओं में समायोजन आवश्यक होता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सफल होने के लिए व्यक्ति में समायोजन करने की क्षमता होनी चाहिए। तनावपूर्ण स्थितियों में वह किस प्रकार सफल हो, इसका उसे ज्ञान होना चाहिए। उसे ऐसी परिस्थितियों से दूर रहना चाहिए जो असमायोजन को प्रोत्साहन देती हो तथा मन की शान्ति की विध्नित करने को अग्रसर हों। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जीन का दूसरा नाम ही समायोजन है।

शफ्रेर सोबन[8] के अनुसार– ''साधारण रूप से समायोजन एक प्रक्रिया है, जिसमें मानसिक एवं व्यावहारिक दोनों ही प्रकार के प्रत्युत्तर रहते हैं और इनके द्वारा ही एक व्यक्ति अभाव, तनाव, भग्नाशा आदि को व्यक्त करता है तथा आन्तरिक माँगों तथा बाह्य परिस्थितियों के मध्य सामंजस्य लाता है।

शैक्षिक स्टाफ कॉलेज एवं पुनर्श्या एवं पुनश्चर्या पाठ्यक्रम केन्द्रों के संस्थागत वातावरण से सम्बन्धित विभिन्न घटकों के संचित विवेचन का अध्ययन कर ज्ञात होता है कि इन संस्थाओं में आज भी शत-प्रतिशत वित्तीय सहायता होते हुए भी अनेक भौतिक, शैक्षिक, व्यावसायिक, प्रशासनिक, गृह स्वास्थ्य सामाजिक व संवेगात्मक कमियां होने के कारण वांछित संस्थागत वातावरण का पूर्णरूपेण अभाव है।

अत: सहभागी विश्वविद्यालयी/महाविद्यालयी शिक्षकों की गृह, स्वास्थ्य, संवेगात्मक, सामाजिक एवं शैक्षिक, प्रशासनिक समायोजन क्षेत्र से सम्बन्धित अनेक समस्यायें हैं। इन समस्याएँ के कारण सहभागी विश्वविद्यालयी/महाविद्यालयी शिक्षक शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों के संस्थागत वातावरण के साथ समायोजन नहीं कर पा रहे हैं। इस प्रकार अभिविन्यास एवं पुनश्चर्या कार्यक्रम निरन्तर सन्दर्भहीन, अर्थहीन तथा अव्यावहारिक होता जा रहा है। अत: आवश्यकता है कि शैक्षिक स्टाफ कॉलेज एवं पुनश्चर्या केन्द्रों के संस्थागत वातावरण को सुधारा जाये तथा विश्वविद्यालयी/महाविद्यालयी शिक्षकों की समुचित समायोजन हेतु उन्हें वांछित सुविधायें प्रदान कर शैक्षिक एंव व्यावसायिक सन्तोष प्रदान किया जाये। इससे विश्वविद्यालयी/महाविद्यालयी शिक्षक अपना अधिकांश समय व शक्ति समायोजन समस्याओं में न लगाकर अपने में जीवनवृत्ति

[8] शफ्रेर, एल.एफ. (1950) ''द साइक्लॉजी ऑफ एडजस्टमेंट,'' बोस्टन।

गुणवत्ता का विकास करके श्रेष्ठ शिक्षक बनने का प्रयास कर सकेंगे तथा यही शिक्षा नीति 1986 के तहत शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों के मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे।

निष्कर्षत: वर्तमान शोधकर्ता द्वारा इंगित संस्थागत वातावरण एवं विश्वविद्यालयी/महाविद्यालयी शिक्षकों की समायोजन समस्याओं की जानकारी से यू.जी.सी. अपने स्तर से वांछित निर्णय ले सकेगा तथा शैक्षिक स्टाफ कॉलेज के निदेशक एवं सेवारत कर्मचारी विश्वविद्यालयी शिक्षकों की समायोजन समस्याओं की प्रकृति की गहराई से अनुभूति करके शैक्षिक स्टाफ कॉलेज के मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास कर सकेंगे। अत: यह अध्ययन प्रासंगिक, आवश्यक एवं समीचीन है।

5. अध्ययन का औचित्य

समाज में शिक्षक का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्परा एवं तकनीकी कौशल पहुँचाने का केन्द्र है तथा सभ्यता के प्रकाश को प्रज्वलित रखने में सहायता देता है। इसलिए अध्यापक को समाज एवं राष्ट्र का निर्माता भी कहा गया है। ऐसे विश्वविद्यालयी/महाविद्यालयी शिक्षकों के ज्ञान को जहाँ अभिविन्यास एवं पुनश्चर्या कार्यक्रमों द्वारा उन्नयन कराया जाता है। ऐसे शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों का राष्ट्रीय अपेक्षाओं की पूर्ति में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वस्तुत: शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों का प्रमुख उद्देश्य विश्वविद्यालयी शिक्षकों में नवीन उपागमों से सम्बन्धित ज्ञान, विशिष्ट कौशल एवं विशिष्ट अभिवृत्तियों का विकास करना है जिससे ये भावी जीवन में शैक्षिक उपलब्धियों को प्राप्त कर सकें। शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों के प्रभावी संस्थागत वातावरण के अभाव में जीवनवृत्ति उन्नयन योजना मात्र काल्पनिक रह जायेगी।

हाँ भारत में आज भी कुछ शैक्षिक स्टाफ कॉलेज हैं जहाँ पर इन संस्थाओं की अस्थायी मान्यता, पुनश्चर्या कार्यक्रमों में सहभागी विश्वविद्यालयी/महाविद्यालयी शिक्षकों की तुलना में अध्यापक/अतिथि व्याख्याताओं का अभाव, सहभागी महाविद्यालयी शिक्षकों के आवास, भोजन व्यवस्था, पुनश्चर्या पाठ्यक्रयों के अन्तराल में दी जाने वाली अल्पहार व्यवस्था का उचित न होना। सहभागी शिक्षकों को यू.जी.सी. के नियमानुसार टी.ए. न मिलना, समृद्ध पुस्तकालयों का न होना, अपूर्ण भवन, पर्याप्त फनीचर, प्रयोगशाला, सहायक सामग्री, शिक्षण उपकरण आदि का न होना, शैक्षिक वातावरण के अभाव में शिक्षकों को शैक्षिक एवं व्यावसायिक विकास के अवसर न प्राप्त होना तथा शारीरिक, धार्मिक क्षेत्रीयता एवं चिकित्सा आदि क्षेत्रों से सम्बन्धित ऐसी अनेक पर्याप्त सुविधाओं का अभाव होने के कारण इन शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों में उपयुक्त संस्थागत वातावरण का

अभाव है। इसका निश्चित प्रभाव विश्वविद्यालयी/महाविद्यालयी शिक्षकों की ज्ञान उन्नयन एवं कार्यकुशलता पर पड़ता है। यही कारण है इन असुविधाओं के कारण सहभागी शिक्षक शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों में अपना समायोजन नहीं कर पा रहे हैं।

वस्तुत: एक ओर पर्याप्त सुविधाओं का अभाव और दूसरी ओर श्रेष्ठ शिक्षकों के निर्माण की अपेक्षा, तो यह एकदम अनुचित सा लगता है। इन शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों में कार्यरत निदेशक एवं अन्य प्राध्यापकों को अपने शैक्षिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए सहभागी शिक्षकों को समुचित वातावरण एवं पूर्णरूपेण व्यावसायिक सन्तोष प्रदान करना चाहिए, अत: यह अध्ययन करने योग्य है।

6. अध्ययन के उद्देश्य

1. यू.जी.सी. शैक्षिक स्टाफ कालेज (ए.सी.सी.) एवम् यू.जी.सी. पुनश्चर्या पाठ्यक्रम केन्द्र (आर.सी.सी.) के संस्थागत वातावरण का अध्ययन करना।
2. राज्य विश्वविद्यालय एवं केन्द्रीय विश्वविद्यालय के शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों के संस्थागत वातावरण का अध्ययन करना।
3. शैक्षिक स्टाफ कालेज में शैक्षिक उन्नयन हेतु सहभागिता करने वाले विभिन्न वर्गों के महाविद्यालयी शिक्षकों की समायोजन समस्याओं के मध्य सार्थकता का अध्ययन करना।
4. शैक्षिक स्टाफ कालेज में शैक्षिक उन्नयन हेतु सहभागिता करने वाले पुरुष एवं महिला महाविद्यालयी शिक्षकों की समायोजन समस्याओं के मध्य सार्थकता का अध्ययन करना।
5. शैक्षिक स्टाफ कॉलेज में शैक्षिक उन्नयन हेतु सहभागिता करने वाले शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के महाविद्यालयी शिक्षकों की समायोजन समस्याओं के मध्य सार्थकता का अध्ययन करना।
6. यू.जी.सी. स्टाफ कॉलेजों के संस्थागत वातावरण एवं समायोजन समस्याओं के मध्य सार्थक संबंध का अध्ययन करना।

7. अध्ययन की विधि

शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए वर्णनात्मक अनुसंधान का एक प्रकार आदर्शमूलक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

8. न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन में वर्गीकृत यादृच्छिक विधि द्वारा न्यादर्श का चयन किया गया है। शोधार्थी द्वारा सर्वप्रथम चयनित राज्यों के शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों के अभिविन्यास एवं

पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों में सहभागिता करने वाले महाविद्यालयी शिक्षकों को कला, विज्ञान, वाणिज्य एवं शिक्षा वर्ग में विभाजित करके प्रत्येक वर्ग में से 25 प्रतिशत महाविद्यालयी शिक्षकों का न्यादर्श के रूप में चयन किया गया है। जिसे तालिका–1 में दर्शाया गया है।

तालिका–1

राज्यों के नाम	पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों में सहभागी महाविद्यालयी शिक्षकों की संख्या				अभिविन्यास पाठ्यक्रम में सहभागी शिक्षकों की संख्या	कुल योग
	कला	वाणिज्य	विज्ञान	शिक्षा		
दिल्ली	30	30	30	30	30	150
हरियाणा	10	10	10	10	10	50
पंजाब	20	20	20	20	20	100
उत्तर प्रदेश	50	50	50	50	50	250
	110	**110**	**110**	**110**	**110**	**550**

उक्त तालिका में दर्शाये गये पुनश्चर्या एवं अभिविन्यास कार्यक्रम में सहभागिता करने वाले कुल 550 विश्वविद्यालयी/महाविद्यालयी शिक्षक ही हमारा न्यादर्श है।

9. शोध में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में समायोजन हेतु प्रमापीकृत ''बैल समायोजन सूची'' तथा संस्थागत वातावरण हेतु स्वनिर्मित ''संस्थागत वातावरण प्रश्नावली'' का प्रयोग किया गया है। इस प्रश्नावली में कुल 65 पदों को सम्मिलित किया गया है, जो व्यावहारिक एवं समीचीन है।

10. शोध अध्ययन के निष्कर्ष

निष्कर्ष– 1. यू.जी.सी शैक्षिक स्टाफ (ए.सी.सी.) कालेज के संस्थागत वातावरण की तुलना में यू.जी.सी. पुनश्चर्या पाठ्यक्रम केन्द्र (आर.सी.सी.) का संस्थागत वातावरण अधिक अच्छा पाया गया।

समाधान– प्रस्तुत परिकल्पना का अवलोकन करने से ज्ञात है कि ए.एस.सी. एवं आर.सी.सी. का संस्थागत वातावरण .01 एवं .05 दोनों स्तरों पर सार्थक होने के कारण प्रस्तुत उपकल्पना स्वीकृत हुई है, इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जाता सकता है कि

ए.सी.सी. की तुलना में आर.सी.सी. में भौतिक एवं शैक्षिक सुविधाएं होने के कारण महाविद्यालयी शिक्षक ए.सी.सी. की तुलना में आर.सी.सी. के संस्थागत वातावरण से अधिक सन्तुष्ट पाये गये।

निष्कर्ष- 2. राज्य विश्वविद्यालयों के शैक्षिक स्टाफ कॉलेज (ए.सी.सी.) की तुलना में केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के शैक्षिक स्टाफ कॉलेज (ए.सी.सी.) का संस्थागत वातावरण अधिक अच्छा पाया गया।

समाधान- प्रस्तुत परिकल्पना के तथ्यों से स्पष्ट होता है कि राज्य एवम् केन्दीय विश्वविद्यालय (ए.सी.सी.) के संस्थागत वातावरण .01 एवम् .05 दोनों सार्थक स्तरों पर स्वीकृत होने के कारण यह कहा जा सकता है कि केन्द्रीय विश्वविद्यालयों को राज्य विश्वविद्यालयों की तुलना में अधिक आर्थिक सहायता मिलने से वे अधिक भौतिक, शैक्षिक व व्यावसायिक संसाधनों से युक्त हैं। यही कारण है कि केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के ए.सी.सी. में सहभागिता करने वाले शिक्षक राज्य विश्वविद्यालयों के एस.सी. के शिक्षकों की तुलना में संस्थागत वातावरण के परिप्रेक्ष्य में अधिक सन्तुष्ट पाये गये।

निष्कर्ष-3. शैक्षिक स्टाफ कॉलेजों में शैक्षिक उन्नयन हेतु सहभागिता करने वाले विभिन्न वर्गों के महाविद्यालयों के शिक्षकों की समायोजन समस्याओं के मध्य सार्थक अन्तर होगा।

समाधान- उक्त परिकल्पना की पुष्टि हेतु विश्वविद्यालयी/महाविद्यालयी शिक्षकों की समायोजन समस्याओं से संबंधित मध्यमान, प्रमाणिक विचलन तथा चरम अनुपात मान ज्ञात कर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कला, विज्ञान एवम् वाणिज्य वर्ग के महाविद्यालयी शिक्षकों की समायोजन समस्याओं के मध्य .05 स्तर पर सार्थक अन्तर पाया गया जबकि कम्प्यूटर अभियान्त्रिकी एवम् प्रबन्ध वर्ग के महाविद्यालीय शिक्षकों की समायोजन समस्याओं का चरम अनुपात मान किसी भी स्तर के लिए (.01 एवम् .05) पर सार्थक नहीं पाया गया। अत: उक्त परिकल्पना कला, विज्ञान एवम् वाणिज्य वर्ग के परिप्रेक्ष्य में स्वीकृत तथा कम्प्यूटर, अभियान्त्रकी एवम् प्रबन्ध वर्ग के परिप्रेक्ष्य में अस्वीकृत हुई है। अत: स्पष्ट होता है कि भिन्न-भिन्न वर्गों के महाविद्यालयी शिक्षकों की समायोजन समस्याओं के मध्य सार्थक अन्तर हैं। यह अन्तर संयोगवश न होकर वास्तविक है।

निष्कर्ष-4. शैक्षिक स्टाफ कॉलेज में शैक्षिक उन्नयन हेतु सहभागिता करने वाले पुरुष महाविद्यालयी शिक्षक महिला महाविद्यालयी शिक्षकों की तुलना में अधिक समायोजित होंगे।

समाधान– प्रस्तुत परिकल्पना के प्रदत्तों का अवलोकन करने से स्पष्ट है कि शैक्षिक स्टाफ कॉलिज में सहभागिता करने वाले महाविद्यालयी पुरुष एवं महिला शिक्षकों की समायोजन समस्याओं में .01 एवं .05 स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है इस प्रकार प्रस्तुत उपकल्पना अस्वीकृत हुई है। इससे इंगित होता है कि पुरुष एवं महिला महाविद्यालयी महाविद्यालयी शिक्षकों की समायोजन समस्याओं के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है, तथा जो अन्तर है वह वास्तविक न होकर संयोगवश है।

निष्कर्ष-5. शैक्षिक स्टाफ कॉलेज में शैक्षिक उन्नयन हेतु सहभागिता करने वाले शहरी महाविद्यालयी शिक्षक ग्रामीण महाविद्यायली शिक्षकों की तुलना में अधिक समायोजित होंगे।

समाधान– प्रस्तुत परिकल्पना के प्रदत्तों का अवलोकन करने के विदित होता है कि शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के महाविद्यालयी शिक्षकों की समायोजन समस्याओं के मध्य .01 एवं .05 स्तर पर सार्थक अन्तर पाये जाने के कारण प्रस्तुत उपकल्पना स्वीकृत हुई है। इससे ज्ञात होता है कि शहरी क्षेत्र के शिक्षक नवीन शिक्षण अभिनवनों की अधिक जानकारी होने के कारण ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों की तुलना में अधिक समायोजित हुए हैं।

निष्कर्ष-6. यू.जी.सी शैक्षिक स्टाफ कॉलेज के संस्थागत वातावरण एवम् समायोजन समस्याओं के मध्य संबंध सार्थक नहीं होगा।

समाधान– यू.जी.सी. शैक्षिक स्टाफ कॉलेज के संस्थागत वातावरण एवं समायोजन समस्याओं से संबंधित सांख्यकीय मूल्यों की निम्नांकित तालिका के अनुसार विवेचना की गई है, जो इस प्रकार है–

तालिका–2 में प्रदर्शित परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के शैक्षिक स्टाफ कॉलेज का संस्थागत वातावरण श्रेष्ठ है तो उनमें सहभागिता करने वाले शिक्षक भी समायोजन समस्याओं से न्यून रूप से ग्रसित थे, जबकि राज्य

तालिका–2 संस्थागत वातावरण एवम् समायोजन समस्याओं के मध्य संबंध केन्द्रीय विश्वविद्यालय के शैक्षिक स्टाफ कॉलेज

सांख्यकीय प्रविधियाँ / समूह	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	मध्यमान अन्तर	चरम अनुपात	सार्थकता स्तर
संस्थागत वातावरण	49.61	21.20	2.25	2.61	<0.01
समायोजन समस्याएँ	55.48	21.70			

राज्य विश्वविद्यालयों के शैक्षिक स्टाफ

सांख्यकीय प्रविधियाँ / समूह	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	मध्यमान अन्तर	चरम अनुपात	सार्थकता स्तर
संस्थागत वातावरण	50.59	21.40	2.17	4.61	<0.01
समायोजन समस्यायें	60.61	19.40			

विश्वविद्यालयों के शैक्षिक स्टाफ कॉलेज में भौतिक एवम् शैक्षिक सुविधाओं की कमी पायी गयी। यही कारण है कि इनमें सहभागिता करने वाले शिक्षक समायोजन समस्याओं से उच्च रूप से ग्रसित थे। इस प्रकार संस्थागत वातावरण एवम् समायोजन समस्याओं के मध्य .01 स्तर पर सार्थक संबंध होने से प्रस्तुत उपकल्पना स्वीकृत की गई।

संदर्भ

बाली, अरूण पी. (1986) कॉलेज टीचर्स : चैलेंजेज एंड रिस्पोंसेस : ए कास्ट स्टडी आफ दिल्ली युनिवर्सिटी, नई दिल्ली, नार्थन बुक सेंटर पी.220

बरूआ, एच.के. (1997) इनसर्विस प्रोग्राम आफ न्यू फैकल्टी मेम्बर, युनिवर्सिटी न्यूज 15(11) पी. 299-300

बयाती जमनलाल (1989) रोल ऑफ मैनेजमेंट इनसर्विस टीचर्स एजुकेशन, एजुकेशनल रिब्यू 95 (11) पी. 196

बैल, एच.एम. (1938) मैनुअल आफ द एडजस्मेंट इन्वैंटरी ऑडिट फ्राम, स्टेनफोर्ड युनिवर्सिटी, स्टेनफोर्ड

बैस, जेम्स एल. (1984) कॉलेज एंड यूनिवर्सिटी आर्गेनाइजेशन: इनसाइट फ्राम द विहेवियर सर्विस न्यूयार्क, न्यूयार्क यूनिवर्सिटी प्रेस पी.247

चालम, के.एस. (1987) एकेडमिक स्टाफ आरिएन्टेशन स्कीम: सम क्रूसिअल इश्यू, युनिवर्सिटी न्यूज 25(50) पी.26-31

धर, बी.बी. एंड सिंह टी. (1990) एकेडमिक स्टाफ कॉलेज: ए डवलपमेंट कॉन्सेप्ट, स्टर्लिंग पबिलशर्स प्रा. लि.

इश्यू इन डवलपमेंट आफ कॉलेज (1997) पब्लिस्ड सोसाइटी फार एजुकेशनल एंड इकोनोमिक डवलपमेंट, 114 अरबिन्दो अपार्टमेंट अधचीनी, नई दिल्ली पी. 3-13

शर्मा, सीता राम (1998) यू.जी.सी. स्कीम: ए मैनुअल फार युनिवर्सिटीज, कॉलेज एंड रिसर्च इंस्टीट्यूशन, मंगलदीप पब्लिकेशन्स, जयपुर, पी. 3-23

टुकर, अलन (1984) चेयरिंग द एकेडमिक डिमार्टमेंट लीडरशिप अमंग प्रेस द्वितीय संस्करण न्यूयार्क, मैकीलन पी. 398

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 17, अंक 3, दिसंबर 2010

चिंतक और चिंतन

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

रश्मि श्रीवास्तव*

सारांश

रवीन्द्रनाथ टैगोर आदर्शवादी विचारधारा के मूल, आध्यात्मिकता तथा आधुनिक प्रकृतिवादी विचारधारा के आधार, प्रकृति के सानिध्य की अवधारणा के संयोजन से एक ऐसा शिक्षा चिन्तन हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं जो बाल मनोविज्ञान से लेकर आध्यात्मिक एकात्म भाव व दैनिक जीवन की समस्याओं के समाधान तक को अपने आप में समाहित किये हुए है। उनका शिक्षा चिन्तन जहाँ बालक के कोमल अन्तर्मन के भाव को हमें बता पाता है वहीं वयस्क मस्तिष्क की सृजनात्मक आवश्यकता की संतुष्टि का मार्ग भी हमें बताता है। उनकी दार्शनिक विवेचनाओं का ये अद्‌भुत सौजन्य हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति में निहित तमाम समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकने में सक्षम है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से ही भारत देश तीव्र आर्थिक विकास कर विश्व के अन्य देशों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने को कृतसंकल्प है इस अवधि में देश की सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था सुदृढ़ हुई है और देश में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का तेजी से विस्तार हुआ है। इस पूरे विकास क्रम में उसका साथ दिया है, शिक्षा ने। स्वतंत्र भारत ने शिक्षा के क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि की है, इसमें कोई दो राय नहीं, किन्तु इस विकास और विस्तार के बीच शिक्षा के क्षेत्र में कुछ अतिमहत्वपूर्ण पक्षों की अनदेखी

* विभागाध्यक्ष (बी.एड.) हीरालाल यादव बालिका डिग्री कालेज, सरोजनी नगर, लखनऊ

भी हुई है, जिसने अनेक व्यावहारिक समस्याओं को जन्म दिया है। इसमें एक प्रमुख समस्या है शिक्षा का बाजारीकरण की। आज शिक्षा के तीनों प्रमुख अंग, प्रबन्धन, प्रशासन व शिक्षण में बाजारीकरण की प्रवृत्ति विद्यमान है। हम देखते हैं कि इन तीनों ही पक्षों में आर्थिक लाभ हानि का प्रश्न ऊपर है। इस पूरे क्रम का नकारात्मक प्रभाव विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों पर पड़ा है। उत्तम उत्पादन हेतु उत्तम मूल्य पर टिकी व्यावसायीकरण की प्रक्रिया ने विद्यार्थियों को एक ऐसी मशीन बना दिया है, जिसे ज्यादा से ज्यादा तथ्यों को रट-रटकर शत-प्रतिशत अंक किसी भी हाल में प्राप्त करने हैं। विद्यालय की मोटी फीस अदा करने वाले अभिभावक की अपेक्षाओं व विद्यालय के उत्तम उत्पादन की बाध्यता के बीच एक विद्यार्थी की स्थिति बहुत सुविधाजनक नहीं है। इनके तमाम दुष्परिणाम आगे चलकर प्रकाश में आते रहते हैं। कभी इन दोनों धूरियों के बीच फंसा बालक हताश हो गहरी निराशा में डूब जाता है, कभी आत्महत्या की ओर प्रवृत्त होता है तो कभी अपनी स्वयं की विशिष्टताओं को पहचान ही नहीं पाता और हीन भावना का शिकार हो जाता है। वह विकास की जिन बुलन्दियों को छू सकता है, उनकी तरफ देखने तक का साहस नहीं करता।

कहना ना होगा कि शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त हो रही इन असामान्य प्रवृत्तियों के प्रति हमें सतर्क होना चाहिए। और यही हमें आवश्यकता महसूस होती है भारत के प्रमुख शिक्षाविदों के शिक्षा चिन्तन की। आज अति आवश्यक प्रतीत होता है कि हम इन शिक्षाविदों के शिक्षा दर्शन में निहित तथ्यों को आत्मसात करें, उन्हें व्यवहारिक रूप दें। शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त हो रही तमाम समस्याओं को रोकने और इसे सकारात्मक दिशा देने के सम्बन्ध में यहाँ रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षादर्शन का आश्रय लेना बड़ा ही व्यवहारिक होगा। पराधीन भारत में जब शिक्षा का प्रचार-प्रसार अंग्रेजी नीति नियम के अनुरूप हो रहा था, रविन्द्रनाथ टैगोर ने शान्ति निकेतन की स्थापना कर एक आदर्श शिक्षा संस्था का उदाहरण हमारे समक्ष रखा था।

उनके शिक्षा दर्शन में हमें शिक्षा के प्रत्येक पक्ष के विषय में ऐसा व्यावहारिक दृष्टिकोण देखने को मिलता है, जो हमारी आज की ढेरों शैक्षिक समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। गुरुदेव के शिक्षा दर्शन की विवेचना के क्रम में आइए हम सबसे पहले इस महान आत्मा के जीवन वृत्त पर एक नजर डालें।

जीवन परिचय

रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म बंगाल के एक ऊँचे घराने में 6 मई, 1861 में हुआ था। उनके पिता का नाम महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर था, जो स्वयं एक धार्मिक, समाज

सुधारक, एवं सुसंस्कृत व्यक्ति थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर के परिवार की उस समय पूरे बंगाल में बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनका परिवार सिर्फ धन-धान्य से परिपूर्ण नहीं था। बल्कि परिवार की प्रतिष्ठा कलाप्रियता, विद्या तथा संगीत व साहित्य प्रेम के लिए भी थी। पिता के समाज कल्याण कार्यों से भी इस परिवार को बड़ी ख्याति मिली थी। उनके पिता बंगाल में ब्रह्म समाज के नेता, देशभक्त, विद्वान एवं बड़े ही धर्मपरायण व्यक्ति थे। इनके छः पुत्रों में रवीन्द्र नाथ टैगोर सबसे छोटे थे। परिवार के वातावरण का उनके व्यक्तित्व पर बड़ा ही सकारात्मक प्रभाव पड़ा। उन्हें अपने माता-पिता से विद्वता, देशभक्ति, धर्म-प्रियता, साधुता तथा कला व साहित्य से प्रेम आदि गुण विरासत के रूप में प्राप्त हुए थे।

प्रारंभिक शिक्षा घर से ही प्रारंभ करने के उपरांत उन्होंने ओरिएन्टल सेनेटरी स्कूल में दाखिला लिया। विद्यालय के सख्त वातावरण तथा अध्यापकों के व्यवहार के कारण वह इस विद्यालय में अधिक दिन न पढ़ सके। अतः सात वर्ष की आयु में ही उनका विद्यालय बदल कर उन्हें नार्बल स्कूल में भर्ती कराया गया। यहां भी रवीन्द्रनाथ टैगोर का अनुभव अच्छा नहीं रहा और उनका विद्यालय पुनः बदलना पड़ा। उन्होंने ईसाई विद्यालय बंगाल अकादमी में प्रवेश लिया। किंतु इस विद्यालय में भी उन्हें अनेक कटु-अनुभवों का सामना करना पड़ा। अन्त में उन्हें सेंट जैवियर स्कूल भेजा गया। इस विद्यालय का वातावरण भी उनके अंतर्मन पर सकारात्मक छाप ना छोड़ सका। कुल मिलाकर उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा में तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था की कमियों को बड़े करीब से देखा था। बाल्यकाल के मन मस्तिष्क पर पड़े विद्यालयी वातावरण के नकारात्मक चिन्हों ने आगे चलकर उनके विचारों को बड़ी सकारात्मक दिशा दी। अपने स्वयं के कटु अनुभवों में प्राप्त पीड़ा द्वारा वह शिक्षा के क्षेत्र की समस्याओं को जान सके थे। अतः उन समस्याओं के समाधान की बड़ी व्यावहारिक योजनाएं वह हमारे समक्ष प्रस्तुत कर सके। रवीन्द्रनाथ टैगोर बचपन से ही बड़े प्रतिभावान थे। आठ वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने बंगला भाषा में एक कविता की रचना की थी। वह अपने पिता के साथ विविध स्थानों पर भ्रमण के लिए जाते थे, अतः उनमें बचपन से ही प्रकृति प्रेम की भावना विकसित होने लगी थी।

सन् 1878 में युवा टैगोर को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड भेजा गया। वहां उन्हें ब्राइटन स्कूल में भर्ती कराया गया, किंतु यहां भी टैगोर के अंतर्मन को संतुष्टि ना मिल सकी। और वह अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़ कर सन् 1880 में स्वदेश वापस आ गये। एक वर्ष बाद 1881 में कानून की शिक्षा प्राप्त करने के लिए वह पुनः इंग्लैण्ड

गये, किंतु उनका कलाप्रेमी, साहित्य प्रेमी मन कानूनी दांव पेंच के सिद्धांतों में न रम सका। उन्होंने पुनः अपनी पढ़ाई छोड़ दी और अपनी जन्मजात प्रतिभाओं के साथ खुद को एक शांत दिशा की ओर बढ़ जाने दिया, जहां वह खुद को संतुष्ट व प्रसन्न महसूस कर पाते थे, यह दिशा थी कला व साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने की।

1881 में स्वदेश लौटने के उपरांत उन्होंने समाजसेवा तथा राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर एक लेखक के रूप में अपना जीवन आगे बढ़ाया। सबसे पहले उन्होंने मासिक पत्रिका 'भारती' तथा इसके बाद 'साधना' नामक पत्रिका के लिए लिखना आरंभ किया। वह समाजसेवा के कार्य में भी संलग्न हुए। राजनीतिक घटनाक्रम में भी उन्होंने अपनी भागीदारी प्रदर्शित की। सामाजिक, राजनीतिक व शैक्षिक कार्यों के बीच उनकी साहित्य साधना निरंतर चलती रही, जिसने आगे चल कर उन्हें विश्वव्यापी प्रतिष्ठा प्रदान की। रवीन्द्रनाथ टैगोर इस बात को भली प्रकार जानते थे कि किसी भी बात को जनसामान्य तक पहुंचाने का सबसे प्रभावशाली साधन शिक्षा है। अतः अपनी साहित्यिक साधना के साथ-साथ वह शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कार्य में भी संलग्न रहे। बोलपुर के समीप सन् 1901 में शान्ति निकेतन की स्थापना करने के साथ उन्होंने खुद को शिक्षा-साहित्य व समाज सेवा के कार्य में समर्पित कर दिया। शान्ति निकेतन के माध्यम से शिक्षा के प्रसार व समाज सेवा के माध्यम से उन्होंने अपनी एक अलग पहचान बनाई।

रवीन्द्रनाथ टैगोर का पारिवारिक जीवन बड़े ही उतार-चढ़ाव वाला रहा। सन् 1901-1902 के आस-पास जब वे अपनी योजनाओं को साकार रूप देने में व्यस्त थे, जब उन्हें पारिवारिक सहयोग व सम्बल की आवश्यकता थी, तभी सन् 1902 में उनकी पत्नी का निधन हो गया। इस दुःखद घटना के कुछ वर्षों के भीतर ही टैगोर को अपनी पुत्री तथा पुत्र का निधन भी देखना पड़ा। इन दुखद घटनाओं के बीच भी उन्होंने खुद को विचलित नहीं होने दिया। वे अपने कर्तव्य पथ पर निरन्त आगे बढ़ते रहे। सन् 1913 ई. में अपनी कृति गीतांजलि पर नोबल पुरस्कार प्राप्त करने के साथ ही वह एक विश्वविख्यात व्यक्ति बने।

रवीन्द्रनाथ टैगोर भारत के प्राचीन काल की गुरूकुल प्रणाली के बहुत बड़े प्रशंसक थे। उनका साहित्यकार मन प्रकृति की गोद में बड़े संतोष का अनुभव करता था। उन्होंने इन दोनों चीजों का आश्रय लेकर शान्ति निकेतन के माध्यम से एक बड़ी ही व्यावहारिक शिक्षा पद्धति हमारे सामने रखी। उन्होंने एक शिक्षक के रूप में यहां अध्यापन कार्य भी किया। नोबल पुरस्कार प्राप्ति के पश्चात् शान्ति निकेतन की कार्यों के देख-रेख करने के साथ-साथ उन्होंने कुछ वर्ष विदेश यात्राओं में बिताए और सम्पूर्ण विश्व में शान्ति,

एकता एवं भातृत्व का संदेश दिया। सन् 1915 में ब्रिटिश शासकों ने उन्हें नाइटहुड की उपाधि से सम्मानित किया। अंग्रेजों द्वारा प्राप्त यह उपाधि बड़े ही सम्मान का प्रतीक थी। किन्तु भारत में चल रहे स्वतंत्रता संग्राम के बीच 1919 में हुए जलियावाला बाग कांड ने उन्हें भीतर तक द्रवित किया और इस घटना के विरोध स्वरूप उन्होंने इस उपाधि का त्याग कर दिया, जो कि उनके देशप्रेम की भावना को प्रकट करता है। सन् 1020 से 1930 के मध्य उन्होंने यूरोप, अमेरिका व एशिया के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया। इन देशों में उनके अनेक भाषण हुए और भारत व यूरोपीय देशों के मध्य मित्रता का प्रसार हुआ। 7 अगस्त सन् 1941 को भारत की यह महान विभूति सम्पूर्ण विश्व पर अपनी अमिट छाप छोड़कर इस संसार से विदा हो गयी।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचार

रवीन्द्रनाथ टैगोर बाल्यकाल में अपने विद्यालयों के वातावरण से सन्तुष्ट न थे। अत: युवावस्था में जब उन्होंने शिक्षा के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में कार्य करना आरम्भ किया तो बड़ी ही सुनियोजित व्यवस्था हमारे सामने रखी। अपने विद्यालयी जीवन में वे जिन कटु अनुभवों से गुजरे थे उनका समाधान उनके शिक्षा संबंधी विचारों में देखने को मिलता है। विद्यालयों में तत्कालीन स्थिति के विषय में उन्होंने लिखा था 'इस देश में हम जिसे स्कूल कहते हैं, वह शिक्षा देने का एक कारखाना है। अध्यापक इस कारखाने का अंग है। साढ़े दस बजे घंटी बजती है और कारखाना खुलता है। कल चलती रहती है, साथ ही अध्यापक का मुंह भी चलता रहता है। चार बजे कारखाना बन्द हो जाता है और साथ ही अध्यापक रूपी कल भी अपना मुंह बन्द कर देती है। छात्रगण कल से प्राप्त विद्या के दो चार पन्ने रट कर घर लौट जाते हैं। उसके बाद परीक्षा के समय इस विद्या की जांच होती है ओर उस पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया जाता है।'

तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था के प्रति कल-कारखाने शब्द का प्रयोग उस मसय की शिक्षा पर करारा व्यंग्य था। वास्तव में, टैगोर तथ्यों को रटकर याद करना और परीक्षा में उसे उत्तर पुस्तिका में लिख देने की प्रक्रिया को शिक्षा नहीं मानते थे। उन्होंने शिक्षा शब्द की बड़ी ही व्यावहारिक व विस्तृत व्याख्या की और एक उत्कृष्ट शिक्षा दर्शन हमारे समक्ष प्रस्तुत किया, जिसका क्रमबद्ध विवेचन इस प्रकार है:

शिक्षा का अर्थ

रवीन्द्रनाथ टैगोर शिक्षा को जीवन की सर्वाधिक अनिवार्य आवश्यकता मानते थे। उनके अनुसार, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वर द्वारा निर्मित है। वह आत्मा को परमात्मा का अंश मानते

थे। उनका मत था कि प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का अंश आत्मा है। वह ईश्वर व प्रत्यक्ष जगत दोनों को वास्तविक मानते थे, अत: जीवन के उद्देश्यों में उन्होंने प्रत्यक्ष जगत व परलोक दोनों को स्थान दिया। शिक्षा को जीवन का लक्ष्य की प्राप्ति का प्रमुख साधन मानते हुए उन्होंने शिक्षा की व्याख्या एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया के रूप में की, जिसके द्वारा मनुष्य भौतिक प्रगति करता है और आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करता है। भौतिक दृष्टि से शिक्षा के सम्बन्ध में उन्होंने कहा- वास्तविक शिक्षा वह है जो उपयोगी वस्तुओं की वास्तविक प्रकृति को जानने और उनके उपयोग करने उनसे वास्तविक जीवन की रक्षा करने में सहायता करती है। उन्होंने शिक्षा को आध्यात्मिक एकात्म भाव की अनुभूति का साधन मानते हुए कहा- ''सर्वोच्च शिक्षा वही है जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है।''

यहां सम्पूर्ण सृष्टि से उनका तात्पर्य संसार के जड़-चेतन, सजीव-निर्जीव व चर-अचर सभी प्रकार की वस्तुओं से है। सामंजस्य स्थापित करने से उनका तात्पर्य मनुष्य की समस्त शक्तियों को पूर्णरूप से विकसित करके उन्हें उच्चतम बिंदु पर पहुँचाने से है। इसे ही टैगोर ने पूर्ण मनुषत्व कहा। अत: रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार, शिक्षा का तात्पर्य पूर्ण मनुष्यत्व के विकास की प्रक्रिया से है।

शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा प्रदान कर हम एक मनुष्य को क्या बनाएँ? यह प्रश्न मानवीय सभ्यता के साथ जुड़ा हुआ है। वह कौन से गुण, वह कौन सी विशिष्टताएं हैं, जिन्हें हमें शिक्षा के माध्यम से प्राप्त करना चाहिए, सदैव एक शिक्षक, एक शिक्षाविद् के अन्तर्मन में आकार लेता रहता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के लेखों तथा उनकी साहित्यिक रचनाओं में हमें इस प्रश्न का उत्तर मिलता रहा है। विश्व भारती की स्थापना के उद्देश्यों का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा था- ''जो हम रट कर प्राप्त करते हैं, वह ज्ञान प्रतिभाप्रद विचारों का नहीं होता।'' उनका मानना था कि बिना उपयुक्त मानसिक विकास के व्यक्ति जीवन की विभिन्न समस्याओं का समाधान नहीं खोज सकता और ना किसी प्रकार की उन्नति कर सकता है। अत: व्यक्ति को ज्ञानवान बनाकर उसमें स्मृति, तर्क, चिन्तन और कल्पना आदि मानसिक शक्तियों का विकास करना शिक्षा का उद्देश्य अवश्य होना चाहिए।

उन्होंने कहा था, ''पुस्तकों के बजाय प्रत्यक्ष रूप से जीवित व्यक्ति को जानने का प्रयास करना शिक्षा है। इससे ना केवल कुछ ज्ञान प्राप्त होता है, बल्कि इससे जानने की शक्ति का भी विकास होता है, जितना कक्षा में सुने जाने वाले व्याख्यानों से होना

असम्भव है। यदि हमारे मस्तिष्क के संवेगों और कल्पना को वास्तविकता से पृथक कर दिया जाता है, तो वे निर्बल तथा विकृत हो जाते हैं।'' वह बालक के शरीर, मन तथा संवेगों तीनों का सर्वांगपूर्ण विकास चाहते थे।

शिक्षा को रोजगार परक बनाने के क्रम में उन्होंने हस्तकार्य, शिल्प व कृषि शिक्षा को भी स्थान दिया। वह मनुष्य की व्यक्तिक भिन्नता में विश्वास करते थे। उनका मानना था कि शिक्षा द्वारा बच्चे का विकास उनकी रुचि रुझान व क्षमताओं के अनुसार किया जाए। एक बालक को उत्तम मानव बनाने का विचार देते हुए उन्होंने नैतिक नियमों, ब्रह्मचर्य, अनुशासन, ध्यान व साधना आदि का उल्लेख किया है। और उनके पालन के लिए आन्तरिक शक्ति, आन्तरिक स्वतंत्रता, आत्मानुशासन और ज्ञान को आवश्यक माना। इन सबके साथ वह एक व्यक्ति में सामन्जस्य स्थापित करने की क्षमता के विकास को भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने यह कहा भी था ''इस समय हमारा ध्यान चाहने वाली प्रथम और महत्वपूर्ण समस्या है हमारी शिक्षा और हमारे जीवन में सामंजस्य स्थापित करने की समस्या।''

टैगोर ने बालकों के नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास को भी अति महत्वपूर्ण माना था। उन्होंने लिखा भी था ''पशु और मनुष्य में यह अन्तर है कि पशु के जीवन में नैतिकता का अभाव होता है... जबकि मनुष्य के जीवन में कहीं न कहीं नैतिक आधार मौजूद रहता है।'' उनका मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में इस नैतिकता के आधार को विकसित करना भी होना चाहिए। वह एक आदर्शवादी विचारक थे और शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास करना भी मानते थे। उन्होंने एक व्यक्ति के जीवन में मानवतावादी मूल्यों को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान दिया था। उनका मानना था कि उच्चतम शिक्षा वह है जो हमें सम्पूर्ण संसार की एकता से परिचित कराए। उनके अनुसार, जब मनुष्य, विश्वभर के प्राणियों में एक आत्मा के दर्शन करने लगे, तभी यह समझो कि उसे आत्मतत्व की अनुभूति हो गई है। इस चरम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृतियों के ज्ञान पर बल दिया। उनका मानना था कि पहले हम सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता की अनुभूति करें, इसके बाद ही आत्मिक एकता की अनुभूति हो सकेगी।

पाठ्यक्रम

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने व्यक्तिगत अनुभव द्वारा एक विद्यालयी पाठ्यक्रम में जिन कमियों को महसूस किया था, शान्ति निकेतन की स्थापना के साथ वहां के पाठ्यक्रम में उन्होंने उन कमियों को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने मनुष्य के प्राकृतिक,

सामाजिक तथा आध्यात्मिक तीनों पक्षों के विकास पर बल दिया था। अत: उन्होंने पाठ्यक्रम के ऐसे व्यापक स्वरूप का समर्थन किया था जो सैद्धांतिक होने के साथ-साथ व्यावहारिक भी हो, जो क्रिया प्रधान हो तथा जिसमें पाठ्यसहगामी क्रियाओं को भी स्थान प्राप्त हो तथा जिसके माध्यम से एक बालक का शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास किया जा सके। शिक्षा द्वारा एक बालक में आत्माभिव्यक्ति के गुण पैदा करने व समन्वीकरण के विकास को भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण माना था उनका मानना था कि बालक संगीत, कला और दस्तकारी (हस्तकला) के माध्यम से स्वयं को बड़ी सहजता से व्यक्त कर सकता है, इसलिए विद्यालयी पाठ्यक्रम में इनका समावेश भी किया जाय।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रवीन्द्रनाथ टैगोर एक विद्यालय के पाठ्यक्रम को क्रिया प्रधान व व्यवाहारिक बनाए जाने पर अधिक जोर देते हैं। और ऐसे पाठ्यक्रम का समर्थन करते हैं, जिससे विषय, उपयोगी क्रियाएं तथा पाठान्तर क्रियाओं का समन्वय हो। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है-

(1) विषय- मातृभाषा, संस्कृत, अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल, प्रकृति अध्ययन, विज्ञान, कला और संगीत।

(2) उपयोगी क्रियाए- बागवानी, कृषि, क्षेत्रीय अध्ययन, भ्रमण, विभिन्न वस्तुओं का संग्रह और प्रयोगशाला कार्य।

(3) पाठान्तर क्रियाएं- खेलकूद, नाटक, संगीत, नृत्य, मौलिक रचना, समाज सेवा, छात्र स्वशासन आदि।

शान्ति निकेतन की स्थापना के समय उन्होंने इसी प्रकार के पाठ्यक्रम को लागू किया था। आगे चलकर जैसे-जैसे शान्ति निकेतन स्थित विद्यालय का विस्तार होता गया, उसमें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के भाषा, साहित्य एवं संस्कृतियों को उसकी पाठ्यचर्या में सम्मिलित किया जाने लगा।

शिक्षण पद्धति

''वास्तविक वस्तुओं के संपर्क में आने से जो छात्रों के सामने उपस्थित है, उनकी निरीक्षण तथा तर्क शक्ति का विकास होता है।'' इस वाक्य के माध्यम से हमें रवीन्द्रनाथ टैगोर की शिक्षण पद्धति संबंधी विचारों का पता चलता है। उन्होंने विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा में व्यावहारिकता पर बड़ा जोर दिया था। बालक की असीम शक्ति एवं जिज्ञासा में उनकी आस्था थी और वे विभिन्न बालकों की

व्यक्तिगत भिन्नता को पर्याप्त महत्व देते थे। अत: उन्होंने इस प्रकार की शिक्षण विधियों को उपयुक्त माना, जिसमें बालकों की स्वतंत्रता, शिक्षण की सजीवता, यथार्थता, क्रियात्मक के गुण हों, साथ ही जो मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित हो। वे प्राकृतिक वातावरण में प्राकृतिक सिद्धांतों द्वारा शिक्षण के समर्थक थे। उन्होंने भारत की प्राचीन शिक्षण विधियों का समर्थन किया था, किंतु वर्तमान संदर्भों में वे उसमें कुछ आवश्यक सावधानियां बरतना चाहते थे। इस प्रकार उनके शिक्षण पद्धति सम्बन्धी विचार आधुनिक परंपरागत शिक्षण पद्धतियों का सम्मिलित रूप थी। उन्होंने मुख्यत: जिन शिक्षण विधियों पर जोर दिया, उनका उल्लेख निम्नवत् है–

1. मौखिक विधि
2. स्वाध्याय विधि
3. क्रिया द्वारा सीखना
4. भ्रमण विधि
5. वाद-विवाद तथा प्रश्नोत्तर विधि
6. प्रयोग विधि

मौखिक विधि: इस विधि का प्रयोग भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति में किया जाता था। टैगोर ने वर्तमान शिक्षण व्यवस्था में इसके महत्त्व को स्वीकार किया, यद्यपि यहां वह बालकों को शंका समाधान की स्वतंत्रता दिये जाने का समर्थन करते हैं। उन्होंने यह भी बताया कि जब किसी विषय सामग्री को क्रिया तथा प्रयोग द्वारा सीखना या तो उचित ना हो या फिर ऐसा करना सम्भव ना हो, तभी एक शिक्षक बालक को मौखिक विधि से शिक्षा प्रदान करे, अन्यथा उसे अन्य क्रियात्मक पद्धतियों द्वारा सीखने को स्वतंत्र कर दे।

क्रिया द्वारा सीखना: टैगोर ने कहा था ''मनुष्य को जीवन में अधिक से अधिक सक्रिय होना चाहिए। इससे वह अपने अन्तर्निहित गुणों को व्यक्त करता है और दूर की वस्तुओं को अपने निकट समेटता है। इस प्रकार क्रियाशील बन कर अपनी वास्तविकताओं को प्रकट कर मनुष्य बराबर नई-नई वस्तुओं का अनुभव करता है।'' उनका मानना था कि क्रिया के माध्यम से शिक्षा दी जाए। चूंकि मनुष्य मनो-शारीरिक प्राणी है, अत: हम शरीर और मस्तिष्क को एक दूसरे से अलग नहीं रख सकते। मनुष्य जो शारीरिक क्रिया करता है उसका प्रभाव शरीर तथा मस्तिष्क दोनों पर पड़ता है। उन्होंने कहा था ''सबसे ऊंची शिक्षा वह है जो केवल जानकारी ही नहीं देती बल्कि हमारे जीवन का इस संसार में समन्वय स्थापित करती है। गुरूदेव का मानना था कि ये क्रियाएं बच्चों के अपने

जीवन से संबंधित होनी चाहिए। क्रिया में बच्चों की रुचि हो। साथ ही की जाने वाली क्रिया को वे अपने ढंग से सम्पादित करने के लिए स्वतंत्र हो और तत्संबंधी क्रियाओं के सम्पादन में वे जटिलता का अनुभव न करें। वे अनेक जटिल अध्यायों को बड़ी सहजता से सीख लेंगे। वे इस बात के भी समर्थक थे कि बालकों को किसी हस्तकला या दस्तकारी में भी प्रशिक्षित किया जाए।

स्वाध्याय विधि: टैगोर का यह भी मानना था कि जिस क्रिया अथवा ज्ञान को बालक स्वयं अपने प्रयत्न व चिन्तन से सीखता है, वह ज्ञान व क्रिया स्थाई होती है। अत: बालकों को स्वप्रयास व स्वचिंतन द्वारा सीखने को प्रेरित किया जाए, जिसे स्वाध्याय भी कहा जा सकता है। स्वाध्याय भी भारत की प्राचीन शिक्षण विधियों में से एक है। टैगोर इसे कुछ आवश्यक सावधानियों के साथ प्रयुक्त किये जाने का समर्थन करते हैं। इसके तहत सर्वप्रथम बालक को स्वाध्याय योग्य बनाया जाए, उसे भाषा का स्पष्ट ज्ञान कराया जाए तथा उसे स्वयं पढ़कर समझने का अवसर दिया जाए। यहां बालक को विचार-विमर्श की स्वतंत्रता व समस्या समाधान हेतु निर्देश भी दिये जा सकते हैं।

भ्रमण विधि: रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों के लिए भ्रमण विधि को अति उत्तम माना। उन्होंने कहा था भ्रमण के द्वारा पढ़ाना शिक्षण की सर्वोत्तम विधि है। उनका मानना था कि भ्रमण द्वारा हमारी मानसिक शक्तियां सतर्क रहती हैं, जिनके परिणामस्वरूप हम प्रत्यक्ष की जाने वाली बातों को सरलता से समझ लेते हैं। भ्रमण हमें वस्तुओं को प्रत्यक्ष रूप से देखकर उनका अध्ययन करने का अवसर भी प्रदान करती है।

वाद-विवाद तथा प्रश्नोत्तर विधि: वाद-विवाद द्वारा हम एक सही समस्या का अवलोकन विविध रूप में कर पाते हैं। किसी एक विषय पर यदि कुल दस व्यक्तियों को विचार अभिव्यक्ति का अवसर दिया जाए तो दस विभिन्न दृष्टिकोण हमारे सामने आएंगे। इनके बीच यदि विचारों के आदान-प्रदान की स्वतंत्रता दे दी जाए तो दिये गये विषय का ऐसा विश्लेषण हमारे सामने होगा, जिसे यदि इकट्ठा कर दें तो एक पुस्तक तुरंत सामने होगी। गुरूदेव ने सदैव इस बात का समर्थन किया था कि बालक खुद करे, खुद सोचे, और खुद ही निष्कर्ष प्राप्त करे। हां समस्यात्मक पहलुओं पर निर्देशन प्राप्त करने में भी पीछे ना रहे। यही कारण है कि वाद-विवाद तथा प्रश्नोत्तर विधि को विद्यालयों में प्रयुक्त करने का उन्होंने पूरा समर्थन किया। उनका मानना था कि पुस्तकों से विषय सामग्री रट लेने के बजाए इन विधियों के प्रयोग से स्वयं विचार-विमर्श कर

ज्ञात कर समझ लेना अधिक व्यवहारिक, अधिक उपयुक्त है।

प्रयोग विधि: टैगोर ने कला-कौशल, विज्ञान और अन्य व्यावहारिक विषयों एवं क्रियाओं की शिक्षा के लिए प्रयोग विधि का समर्थन किया। उनका मानना था कि स्वयं प्रयोग करके सीखे गये तथ्य स्थाई तथा प्रभावी होते हैं। प्रयोग विधि में प्रदर्शन, अनुकरण तथा अभ्यास इन तीनों ही प्रतिक्रियाओं का समावेश किया जाना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रवीन्द्रनाथ टैगोर की सीधी लड़ाई एक बालक को मशीन बना दिये जाने की प्रक्रिया से है। बालक ज्यादा से ज्यादा शब्दों को याद कर ले, ढेरों गणितीय सूत्र याद कर त्वरित रूप में बताता जाए और किसी भी प्रकार उसके मस्तिष्क में ढेरों जानकारी पहुंचा दी जाए जो उन्हें निर्देश प्राप्त होते ही ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दे, विद्यालयों में इस प्रकार की क्रियाओं के विरुद्ध उन्होंने बालक की स्वतंत्रता, स्वचिन्तन तथा क्रियात्मक को प्रमुखता दी। शान्ति निकेतन में इन विधियों को प्रयुक्त कर उन्होंने इनकी व्यावहारिक उपयोगिता भी हमें बताई। हम उनके इस प्रयास तथा बालकों को कक्षा की चारदीवारी से बाहर निकाल खुले आकाश में सांस लेने-देने का अवसर प्रदान करने के लिए, उनके कृतज्ञ हैं।

अनुशासन

एक छात्र घर की खिड़की पर खड़ा सामने मैदान में उन्मुक्त भाव से खेलते बच्चों को ललचाई नजरों से देखता है। तनिक पास तन कर खड़ा वृक्ष बड़ा आर्कषक है। वह दौड़ कर उस वर्ग में शामिल हो जाना चाहता है, भागकर इस पेड़ की टहनी पर बैठ जाना चाहता है, किन्तु अभिभावक की डांट के डर से अपनी पुस्तक हाथ में लिए खड़ा है। अध्यापक द्वारा दिया गया पाठ आज उसे याद करना ही है। वह बार-बार पाठ पर ध्यान केंद्रित करता है, किन्तु मन उचट कर वापिस उन्हीं बच्चों में खो जा रहा है। छात्र स्वयं को अपराधी महसूस करता है। यह कर्तव्यनिष्ठ छात्र पुनः हर तरफ से ध्यान हटा पाठ को कंठस्थ करना चाहता है। मगर नहीं, मन की तरंगें पुनः उस ओर ही दौड़ जाती हैं। घंटों पुस्तिका हाथ में लिये रहने, बार-बार उनकी पंक्तियों को दोहराने के बावजूद पाठ याद न हो सका है। अब क्या होगा?

रवीन्द्रनाथ टैगोर इस स्थिति का बड़ा व्यावहारिक हल हमें बताते हैं। उनका मानना था कि निर्देशों के बन्धनों में बंधा छात्र मन की तरंगों को भी बांध लेगा ऐसा आवश्यक नहीं है। बालक को उसकी प्रकृति के अनुरूप विकसित होने दो। छोटे बालक के लिए खुले मैदान का विस्तार उसमें फैली घास तथा उसके आस-पास खड़े वृक्ष का आकर्षण

अभ्यास पुस्तिका के शब्दों से अधिक है, तो क्यों ना कम आकर्षक को अधिक आकर्षक के साथ जोड़ दिया जाए? खिड़की की ओट में खड़े इस छोटे से बालक को क्यों ना उसकी अभ्यास पुस्तिका के साथ वृक्ष की टहनी या उसकी छांव में बैठ जाने दें। आप देखें यहां उसका मन स्वयं नियन्त्रित हो जाएगा।

मनुष्य का मन निदेर्शों, बन्धनों में जकड़ा होने पर बड़ी उथल-पुथल मचाता है। वह उन्मुक्त हो उड़ जाना चाहता है। इसे यदि मुक्त छोड़ दें तो स्वयं सिमट कर दिशा निर्देश की खोज करेगा। टैगोर का मानना था कि अति अनुशासन की चाह में छात्र पर ढेरों अंकुश लगाने से बचा जाए। अनुशासन तो स्वंय से प्रेरित होना चाहिए। हम विद्यालय का वातावरण यहाँ के नियम, कार्यक्रम इस प्रकार रखें कि छात्र स्वत: अनुशासित होकर कार्य करे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर अनुशासन को एक मूल्य या आदर्श मानते थे। अत: वे इसे व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए अति आवश्यक मानते थे। उन्होंने ना तो अंधी आज्ञाकारिता को और ना ही वाह्य व्यवस्था को अनुशासन माना। अनुशासन से उनका तात्पर्य स्वाभाविक अनुशासन से है, जिसे वे आत्म अनुशासन या आन्तरिक अनुशान भी कहते हैं। उनके अनुसार- ''वास्तविक अनुशासन का अर्थ अपरिपक्व एवं स्वाभाविक आवेगों की समुचित उत्तेजना और अनुचित दिशाओं में विकास से सुरक्षा है। अस्वाभाविक अनुशासन की स्थिति में रहना छोटे बच्चों के लिए सुखदायक है। यह उनके पूर्ण विकास में सहायक होता है।'' शान्ति निकेतन में उन्होंने अपनी इस अवधारणा को व्यावहारिक रूप दिया था। वे अपने विद्यार्थी को पूर्ण स्वतन्त्रता देते थे। उनका विचार था कि छात्र को वही काम करने को कहा जाए, जिसमें आनन्द प्राप्त हो। जब तक छात्र अपनी इच्छा से कार्य नहीं करता, तब तक उसे आनन्द नहीं मिलता। अध्यापक का कार्य केवल प्रेरणा देना होना चाहिए। प्रकृति के मध्य में स्थापित शान्ति निकेतन विद्यालय में वे अपने विचारों को मूर्त रूप दिया करते थे। गुरू का निर्देश पाते ही छात्र वृक्ष शाखा पर या आम्रकुंज में अपनी इच्छानुसार पढ़ाई करता।

शिक्षक तथा शिक्षार्थी

टैगोर का स्पष्ट मानना था कि एक शिक्षक का प्रत्यक्ष प्रभाव विद्यार्थी के व्यवहार, उसकी आदतों पर पड़ता है। अत: शिक्षक को आदर्श चरित्र का स्वामी होना चाहिए। उनका मानना था कि शिक्षक को अपने विषय का ज्ञाता, चरित्रवान संयमी, आदर्श आचरण का स्वामी तथा ब्रह्मचारी होना चाहिए। उन्होंने एक शिक्षक में अपने विद्यार्थियों के

लिए प्रेम भाव को सर्वोपरि माना। अपने एक व्याख्यान में उन्होंने कहा था अध्यापक वह है जो जानता है कि प्रकृति का अपना प्रयोजन एक बालक को पूर्ण मनुष्य बनाना है, जब वह बढ़ता है। अर्थात वह ये भी चाहते हैं कि एक शिक्षक बाल मनोविज्ञान का जानकर भी हो, वह जेल के वार्डेन या ड्रिल सार्जेन्ट के समान कठोर ना होकर अपने विद्यार्थियों के प्रति मित्रता तथा सहयोग की भावना से परिपूर्ण हो। टैगोर यहां भारत की परम्परागत विचारधारा का भी समर्थन करते हैं और बताते हैं कि शिक्षक व विद्यार्थी के मध्य पिता-पुत्र का सम्बन्ध होना चाहिए। उन्होंने कहा था- हमारे शिक्षक जब यह समझने लगेंगे कि हम गुरु के आसन पर बैठे हैं और हमें अपने जीवन द्वारा अपने शिष्यों में जीवात्मा फूंकनी है, अपने ज्ञान द्वारा उनके हृदय में ज्ञान और विद्या की ज्योति जगानी है, अपने प्रेम द्वारा बालकों का उद्धार करना है, उनके अमूल्य जीवन का सुधार करना है, उस समय वे सत्य रूप से स्वाभिमान के अधिकारी बन सकेंगे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर का यह भी मानना था कि बच्चों से यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि वे एक प्रोढ़ व्यक्ति की तरह आचरण करेंगे। उन्हें उनकी क्षमता के अनुसार, आत्म प्रकाशन के रचनात्मक अवसर प्रदान कर आगे बढ़ाया जाना अधिक सहज है। एक शिक्षक के समान एक विद्यार्थी में भी उन्होंने कुछ गुण आवश्यक बताए उनका मानना था कि एक विद्यार्थी को विनम्र आज्ञाकारी, अनुशासित तथा उच्चाभिलाषी होना चाहिए, उसे स्वच्छतापूर्ण रहन-सहन, ब्रह्मचारी सौन्दर्य के प्रति लगाव, शान्तिप्रिय तथा आपसी सहायोग की भावना से ओत-प्रोत होना चाहिए।

शिक्षा व्यवस्था के यही दो आधार स्तम्भ हैं, जिन पर पूरी की पूरी शिक्षा व्यवस्था टिकी हुई है। इन दोनों के मध्य यदि सहयोगात्मक सम्बन्ध स्थापित हो गया, दोनों के मन में यदि एक दूसरे के प्रति प्रेम व श्रद्धा का भाव विकसित हो सका तो शिक्षण की प्रक्रिया बड़ी सहज व प्रभावी हो सकेगी। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस आधार स्तम्भ को मजबूत किये जाने पर जोर दिया।

वह बालक को एक ओर जहां व्यापक स्वतन्त्रता दिये जाने की वकालत करते हैं, वहीं आदर्श चरित्र शिक्षक के आचरण के तेज से विद्यार्थी को दी गयी स्वतन्त्रता को सही दिशा देने का मार्ग दिखा देते हैं।

विद्यार्थी के लिए उनके द्वारा बताए गये आवश्यक गुण भी इस तादात्म्य को सहज बनाने का बड़ा प्रभावी साधन है।

विद्यालय

टैगोर बाल केन्द्रित शिक्षा के समर्थक थे। उनका मानना था कि हमारे विद्यालयों का वातावरण कृत्रिम है। हमारे वर्तमान विद्यालय एक प्रकार के कैदखाने हैं। अत: बच्चों की नैसर्गिक प्रवृत्ति का विकास बाधित होता है। हमें छात्रों के ऊपर जबरदस्ती ज्ञान थोपने का प्रयास नहीं करना चाहिए। शिक्षकों द्वारा थोपा गया यह ज्ञान बच्चों के लिए उपयुक्त नहीं है। उसे प्रकृति का सानिध्य दें, उसे प्राकृतिक रूप में विकसित होने दें, वह सशक्त हो सकेगा। प्राचीन गुरूकुल व्यवस्था में उनकी बड़ी आस्था थी। उनका कहना था कि आधुनिक संसार की हलचल से दूर शान्त, प्रकृतिक वातावरण में विद्यालयों की स्थापना की जाए। उनका मानना था कि विद्यार्थियों की सहज प्रवृत्तियों एवं प्राकृतिक शक्तियों को विकसित करने के लिए अध्यापक को छात्रों से तादात्म्य स्थापित करना चाहिए। इसके लिए उन्होंने प्राचीन गुरुकुल व्यवस्था के अनुरूप आवासीय विद्यालयों की व्यवस्था का समर्थन किया।

उन्होंने बताया कि हमें अपने विद्यालय के पुस्तकीय ज्ञान को सिखाने का केन्द्र मात्र होने से बचाना होगा। विद्यालयों को विद्यार्थी के सम्पूर्ण जीवन एवं उनके विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित होना चाहिए। विद्यालयों को राष्ट्र की संस्कृति को सुरक्षित रखने तथा कला एवं साहित्य के विकास का माध्यम भी होना चाहिए। उन्होंने अपने इस स्वप्न को शान्ति निकेतन में साकार रूप देने का प्रयास भी किया। शान्ति निकेतन में दिन का प्रारम्भ और अन्त संगीत के मधुर आलाप से होता था। जिनमें से अधिकांश की रचना टैगोर ने खुद की थी। काव्य के विषय सूर्योदय, सूर्यास्त, वसन्त आगमन, पुष्प-वाटिका फसलों की कटाई, वर्षा, ऋतु, चन्द्रमा आदि रखे जाते। इन कविताओं से छात्रों को आत्मिक आनन्द तथा मानसिक शान्ति मिलती थी तथा उनके हृदय में काव्यात्मक अनुभूति जाग्रत होती थी। वे अपने आसपास के वातावरण में मौजूद सौन्दर्यात्मक पक्ष की अनुभूति कर पाते थे। संगीत काव्य तथा नाटक से वहां का वातावरण मधुरता व चेतना से परिपूर्ण हो जाता था।

यहां विविध प्रकार की हस्तकलाओं द्वारा छात्रों की क्रियाशीलता तथा सृजनात्मकता का भी विकास किया जाता था। बागवानी, बढ़ई के काम, सिलाई आदि के प्रशिक्षण द्वारा उन्हें दैनिक जीवन के आवश्यक क्रियाकलापों की भी जानकारी दी जाती थी। टैगोर इस प्रकार की व्यवस्था देश के प्रत्येक विद्यालय में देखना चाहते थे। उन्होंने कहा था शिक्षा का उद्देश्य है आत्मा की स्वतन्त्रता प्राप्त करना, उस सत्य का साक्षात्कार करना जो हमें मिट्टी के बन्धन से मुक्त कर वह धन प्रदान करती है जो भौतिक सम्पत्ति के रूप में न होकर आन्तरिक प्रकाश के रूप में होता है, जो शक्ति सत्ता

की न होकर प्रेम की होती है, वह हमें इससे मिलती है। टैगोर विद्यालयों को इनकी प्राप्ति का एक साधन मानते थे।

शिक्षा का माध्यम

टैगोर का विचार था कि जन-शिक्षा का माध्यम कोई विदेशी भाषा न होकर मातृभाषा होना चाहिए। उन्होंने कहा भी था ''मातृभाषा में यदि शिक्षा की धारा प्रशस्त न हो तो इस विद्याहीन देश में मरूवासी मन का क्या होगा।'' इस सन्दर्भ में उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन का उदाहरण देते हुए बताया 'सौभाग्य से मेरे ज्येष्ठ भ्राता का यह दृढ़ मत था कि बालक को विदेशी माध्यम से शिक्षा नही मिलनी चाहिए। इस वास्ते जब तक मैं बड़ा नहीं हो गया और बंगाल साहित्य में खूब दक्ष न हो गया, तब तक मेरा अंग्रेजी पढ़ना शुरू नहीं हुआ। मेरी प्रारम्भिक शिक्षा मुझे देशी भाषा द्वारा ही दी गयी। अंग्रेजी पढ़ने से पहले ही मुझे बंगला साहित्य की उत्तम पुस्तकें पढ़ने और समझने का अवसर मिल गया था। अपने आप के अनुभव से मैं भली भांति जानता हूँ कि मेरे संवर्धन और मानसिक विकास में इसका कितना योगदान रहा है। हां, पश्चात् ज्ञान-विज्ञान से स्वयं को जोड़े रखने तथा आधुनिक विकास की धारा से खुद को जोड़े रखने के लिए वह पाठ्यक्रम में अन्य भाषाओं को भी स्थान दिये जाने की वकालात करते हैं, किन्तु प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा की महत्ता की अनदेखी वह नहीं करते। उन्होंने लिखा भी था कि इस देश के अवरूद्ध मानसिक जीवन के संवर्धन के लिए इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि हमारे विद्यार्थी अपनी विद्याओं और भाषाओं से घनिष्ठ परिचय प्राप्त कर लें और इसके साथ ही साथ पाश्चात्य सभ्यता में जो सर्वोत्तम भाग है, उसे भी सुचारु रूप से समझ लें। अपनी भाषाओं और संस्कार के माध्यम पर उन्हें अपने मत स्थिर करने का अवकाश मिलना चाहिए। यही एक मार्ग है जिससे वे पाश्चात्य ज्ञान से लाभ उठा सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रवीन्द्रनाथ टैगोर आदर्शवादी विचारधारा के मूल आध्यात्मिकता तथा आधुनिक प्रकृतिवादी विचारधारा के आधार-प्रकृति के सानिध्य की अवधारणा के संयोजन से एक ऐसा शिक्षा चिन्तन हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं जो बाल मनोविज्ञान से लेकर आध्यतात्मिक एकात्म भाव व दैनिक जीवन की समस्याओं के समाधान तक को अपने आप में समाहित किये हुए है। उलका शिक्षा चिन्तन जहां बाल मन के कोमल अन्तर्मन के भाव को हमें बता पाता है, वहीं वयस्क मस्तिष्क की सृजनात्मक आवश्यकता की संतुष्टि का मार्ग भी हमें बताता है। उनकी दार्शनिक विवेचनाओं का ये अद्भुत सौजन्य हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति में निहित तमाम

समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकने में सक्षम है। हमें उनकी संकल्पना का आश्रय लेते हुए अपने विद्यालयों को नीरसता से बचाना होगा। बालकों को पर्याप्त स्वतन्त्रता देते हुए उन पर कोई जोर जबरदस्ती किये बगैर उनके स्वाभाविक विकास को स्वीकार करना होगा। आज अति आवश्यक है कि हम अपने बालकों को तथ्य संग्रह की मशीन बना दिये जाने के बजाय उनमें क्रियात्मकता का विकास करें। उन्हें ढेरों सैद्धान्तिक जानकारियां देने के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान दें, साथ ही उनमें जीवनोपयोगी हुनर का विकास करें। हमें ऐसे प्रयास करने होंगे कि हमारे विद्यालय बाजार में सजी ढेरों दुकानों में एक दुकान के बजाय साधना केन्द्र हो सकें। एक ऐसा साधना केन्द्र जहां मां सरस्वती की पूजा होती हो। हमारे विद्यालय मानव मस्तिष्क को उन्नत व उत्कृष्टता का ऐसा स्तर प्रदान करने की क्षमता रखते हों, जो मानव सभ्यता को नवीन आयाम दे सकें, उसे सकारात्मक दिशा दे सकें। रवीन्द्र नाथ टैगोर का पथ प्रदर्शन हमें इस उत्कृष्टता की प्राप्ति का उपाय बताता है। डा. एच.बी मुखर्जी ने कहा भी था ''टैगोर आधुनिक भारत में शैक्षिक पुनरुत्थान के सबसे बड़े पैगम्बर थे।'' डा. राधाकृष्णन ने रवीन्द्रनाथ टैगोर के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा था'' टैगोर मानव के आध्यात्म बोध का प्रतीक हैं। उन्होंने मानव जाति के मन को विचार दिया और एक नई सभ्यता तथा नये समाज की हमारी आकांक्षा को उन्नत किया।'' हमें इन उन्नत आकांक्षाओं का आश्रय लेकर अवश्य ही अपनी शिक्षा व्यवस्था को उत्कृष्ट स्वरूप देने का प्रयास करना चाहिए।

सन्दर्भ

शुक्ला, सी.एस, सफाया, आर.एन, शैदा, बी.डी. (2005); उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, धनपतराय पब्लिशिंग, नई दिल्ली, पृ.-167।

गुप्ता राम बाबू (1998); विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा, पृ.-3

तनेजा, बी.आर, तनेजा, एस. (2004) एजुकेशनल थिंकर्स, अटलांटिक पब्लिशर्स, दिल्ली, पृ.-88

टैगोर, रवीन्द्रनाथ (1964); विश्व मानवता की ओर, अनुवादित, इलाचन्द्र जोशी, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, पृ. 66

शर्मा रामनाथ, शर्मा, राजेन्द्र कुमार, (1996); शिक्षा दर्शन, अटलांटिक पब्लिशर्स, दिल्ली, पृ. -294-295

ठाकुर, रवीन्द्रनाथ (2007); शिक्षा, अनमोल साहित्य दिल्ली, पृ.-22

राय अमृत (1990); रवीन्द्रनाथ के निबन्ध, (भाग-2), साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, पृ.-339।

पाण्डेय, रामशर्कल (2002); विश्व के श्रेष्ठ शास्त्री, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ.-305